२०२

हनुमन्नाटक भाषाटीकासहित

P. O. Box 50,
Peking, China.

Sri. Acharya Pandit Chak-
radhar Joshi
Po. Devaprayag
U.P. Himalayas, India

印 度

(रामनाट्यवर्णनम्)

रामस्तदादाय धनुः सहेलं बाणं गुणे योज्य यदा चकर्ष ।
भाति स्म साक्षात्मकरध्वजः स्वर्गतिं प्रचिच्छेद च भार्गवस्य ५० ॥

भार्गवः–(सानुनयम्)

यः कार्त्तवीर्यस्य भुजासहस्रं चिच्छेद वीरो युधि जामदग्न्यः ।
न सायके रामकराधिरूढे ब्राह्मण्यदैन्यप्रणयी बभूव ॥ ५१ ॥

धावद्धूर्जटिधर्मपुत्रपरशुक्षुण्णाखिलक्षत्रिय-
श्रेणीशोणितपिच्छिला वसुमती कोऽस्यामधास्यत्पदम् ।
त्रैलोक्याभयदानदक्षिणभुजावष्टम्भदिव्योदयो
देवोऽयं दिनकृत्कुलैकतिलको न प्राभविष्यद्यदि ॥ ५२ ॥

रामः–(पश्चाज्जामदग्न्यचरणकमलयोर्निपत्य)

उत्पत्तिर्जमदग्नितः स भगवान्देवः पिनाकी गुरु-
र्वीर्यं यत्तु न यद्गिरामनुपथं व्यक्तं हि तत्कर्मभिः ।

रामजीके धनुषको चढा रहे हैं तो क्या अब किसी दूसरी कन्याके साथ विवाह करके मुझपरभी निर्दयीपना दिखावेंगे) ॥ ४९ ॥

(श्रीरामचन्द्रजीके नाट्यका वर्णन) उस समय श्रीरामचन्द्रजीने लीलाके साथ धनुषको उठाय जब प्रत्यंचापर बाणको चढाकर खैंचा तब उनकी शोभा साक्षात् कामदेवके समान होगई और उस बाणसे रामने परशुरामजीकी स्वर्गतिका छेदन कर दिया ॥ ५० ॥

परशुराम–(नम्रताके साथ) जिस जमदग्निकुमार वीर परशुरामने संग्राममें कार्त-वीर्य अर्जुनकी सहस्र भुजाओंको काटडाला था, जब श्रीरामचन्द्रने धनुषको चढाया तो अब वही ब्राह्मणोंकी स्वाभाविक दीनताका प्रेमी हो गया ॥ ५१ ॥

त्रिलोकीको अभय प्रदान करनेमें दाहिने हाथका सहारा देनेवाले दिव्य मूर्ति सूर्य-कुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी यदि अवतार न लेते तो क्षत्रियोंका नाश करनेमें शीघ्रता करनेवाले रुद्रभगवान्के शिष्य परशुरामके कुठारसे छिन्नभिन्न हुए सब क्षत्रियोंके रुधिरसे गीली हुई इस पृथ्वीमें कौन चरण रखता ॥ ५२ ॥

रामचन्द्र–(परशुरामजीके चरणोंमें गिरकर) सत्य ब्रह्म और शारीरिक तपके निधान हे भगवन् ! आपमें सबही बातें अलौकिक हैं, आपका जन्म जमदग्निऋषिसे

त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः
सत्यब्रह्मतपोनिधे भगवतः किं किं न लोकोत्तरम् ॥ ५३ ॥

परशुरामः–(सदयं ।)

माता का न शिशोर्वचांसि कुरुते दासीजनोक्तानि या
कस्तातः प्रमदाप्रतारितमतिर्जानाति कृत्यं न यः ।
कश्चायं भरतश्रियामविधिना यो राजते दुर्नयो
व्यापेधार्थमधिज्यधन्वनि मयि श्रीरामभृत्ये स्थिते ॥ ५४ ॥

ज्ञात्वावतारं रघुनन्दनस्य स्वकीयमालिङ्ग्य ततोऽवगाढम् ।
विन्यस्य तस्मिञ्जमदग्निसूनुस्तेजो महत्क्षत्त्रवधान्निवृत्तः ॥ ५५ ॥

रामविवाहवर्णनम्–

निःसाणमर्दलरसालगभीरभेरीझङ्कारतालरवकाहलनादजालैः ॥
पूर्णं बभूव धरणीगगनान्तरालं पाणिग्रहे रघुपतेर्जनकात्मजायाः ५६ ॥

हुआ है, प्रसिद्ध भगवान् पिनाकधारी महादेवजी आपके गुरु हैं, और आपकी जिस बीरताको वाणी वर्णन नहीं कर सकती वह आपके कर्त्तव्योंसेही प्रकट होरही है, और आपने तो सातों समुद्रोंसे घिरी हुई सब पृथ्वीको निष्कपटभावसे दान करके त्याग दिया ॥ ५३ ॥

परशुराम–(दयासे) ऐसी कौनसी माता है जो दासीजनोंकी कही हुई अपने बालककी बातोंको पूरा नहीं करती ? ऐसा कौन पिता है जो स्त्रियोंसे अपनी बुद्धिको ठगाकर करने न करने योग्य कार्यको नहीं जानता है, और धर्मयुद्ध तथा विद्याके प्रभावसे होनेवाले अन्यायको दूर करनेके लिये धनुष चढाये रहनेवाले मुझ आपके सेवकके विद्यमान रहते भरतवंशी राजाओंका अन्याय कौन वस्तु है ? ॥ ५४ ॥

जमदग्निकुमार परशुरामजी रामचन्द्रजीको अवतार जानकर उनको दृढताके साथः हृदयको लगाके अपना बडा तेज उनमें रखकर क्षत्रियोंके वधसे निवृत्त होगये॥ ५५॥

(श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका वर्णन) श्रीरामचन्द्रजीके साथ जानकीजीका विवाह होनेके समय पृथ्वी और आकाशका मध्यभाग निसान ढोल रसाल नामक वाजोंके शब्द और घहराते हुए नगाडोंके शब्दसे मिले हुए अनेकों वाजोंके शब्दोंसे भरगया ॥ ५६ ॥

रामे श्यामे सकामे स्पृशति जनकजापाणिपद्मं प्रदत्तं ।
पित्रा नेत्रालिपद्मे प्रवरपुरवधूमण्डलानां मुहूर्तं ।
तत्पाणिस्पर्शसौख्यं परमनुभवती सच्चिदानन्दरूपं
तत्रासीद्बाणभिन्ना रमणरतिपतेर्योगनिद्रां गतेव ॥ ५७ ॥

वैवाहिकं कुशिकनन्दनजामदग्न्यं
वाल्मीकिगौतमवसिष्ठपुरोहिताद्यैः ।
रामो विधिं सह समाप्य सलक्ष्मणस्तै-
रानन्दयञ्जनकजां स्वपुरं जगाम ॥ ५८ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके जानकीस्वँयवरोनाम प्रथमोऽङ्कः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽङ्कः ।

प्राप्यायोध्यं स्वजनपरमोत्साहसंभावनाभि-
र्नत्वा मूर्ध्नाऽखिलगुरुजनं सीतया लक्ष्मणेन ।
रामो यामत्रयमपि कथं मारनाराचभिन्नो
नीत्वा सीतां किमिति तुरगांस्ताडयामास दण्डैः ॥ १ ॥

जिस समय पिता जनकजीके दिये हुए जानकीके करकमलको श्याममूर्ति सकाम श्रीरामचन्द्रजीने स्पर्श किया उस क्षणमें देवताओंकी स्त्रियोंके नेत्र कमलकी समान खिल गये और सच्चिदानन्द श्रीरामचन्द्रजीके हाथका स्पर्श होनेके परम सुखको अनुभव करती हुई सीताजी सकल जगत्को रमण करानेवाले कामदेवके बाणसे बिंधकर योगनिद्राको प्राप्त हुईसी होगई ॥ ५७ ॥

लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी विश्वामित्र, परशुराम, वाल्मीक, गौतम, वासिष्ठ और पुरोहित शतानन्दके द्वारा विवाहकी विधिको समाप्त करके जनककुमारीको आनन्दित करते हुए अपनी अयोध्यापुरीको चले गये ॥ ५८ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटकभाषाटीकामें जानकीस्वयंवरनामक प्रथम अङ्क समाप्त ।

श्रीरामचन्द्रजी अपने परिवारवालोंके परम उत्साहपूर्वक किये हुए आदरोंके साथ अयोध्यामें पहुँचकर तथा सीता और लक्ष्मणको साथ लिये सब गुरुजनोंको मस्तकसे प्रणाम कर और कामदेवके बाणोंसे विद्ध होनेके कारण किसी प्रकार दिनके

सर्वलक्षणोपेतान्देवभूपालयोग्यान्मेदुरमन्दुरायां तुरगानवलोक्य मारज्वराकुलितचित्तभ्रांत्या वधूपुत्रयोर्मङ्गलावलोकनायागतस्य भगवतस्तरणेः किरणमालिनस्तुरगा इमे स्वभावतेजस्विनस्तत्ताडनमसोढारस्ताडिताः पुनःपुनर्भगवन्तं भास्करं द्रुतगत्यास्ताचलं नयन्त्विति बुद्ध्वा दाशरथिर्जनकपुत्री च दण्डाघातैस्तुरगांस्ताडयामास निशायां प्रौढायां शीघ्रमावयोः संगमो भवत्वित्यभिप्रायः ॥

अस्तं याते मुकुलनलिनीबान्धवे सिन्धुपुत्रे
प्राचीभागे प्रमदमुदिते पक्वनारिङ्गपिङ्गे ।
रामं कामं गुरुजनगिरा मन्दिरं सुन्दरं स्वं
रम्भोरुस्तं जनकतनया नन्दयन्ती जगाम ॥ २ ॥
प्राचीभागे सरागे तरणिविरहिणी क्रान्तमुद्रे समुद्रे
निद्रालौ नीरजालौ विकसितकुमुदे निर्विकारे चकोरे ।

तीन पहरोंको बिताकर सीताजीको लिये हुए अश्वशालामें गये और तहां दण्डोंसे घोडोंको ताडने लगे ॥ १ ॥

समस्त लक्षणोंसे युक्त देवता और राजाओंके योग्य घोडोंको चित्रलिखित घुडसालमें देखकर, कामदेवकी पीडाके कारण व्याकुल हुए चित्तकी भ्रान्तिसे, पुत्रवधू और पुत्रका मङ्गल देखनेके निमित्त आये हुए भगवान् सूर्यके तेजस्वी स्वभावसेही ये घोडे इनके ताडनको न सहते हुए बार २ ताडित होकर भगवान् भास्करको शीघ्रतासे अस्ताचलको प्राप्त करदेंगे, ऐसा जानकर दशरथकुमार और जानकीजी दंडोंके प्रहारसे घोडोंको ताडन करने लगे, अभिप्राय यह था कि-शीघ्रही प्रौढरात्रिमें हम दोनोंका समागम हो ॥

मुँदी हुई नलिनीको खिलानेवाले सूर्यके अस्त होनेपर और पूर्वभागमें पकी हुई नारंगीके समान पीले चन्द्रमाके उदय होनेपर सास आदि गुरुजनोंके कहनेसे इच्छा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको आनन्दित करती हुई केलेके खम्भकी समान जंघावाली जानकी अपने सुन्दर मन्दिरमें गई ॥ २ ॥

सूर्यके वियोगसे पूर्वदिशाके लाल होनेपर, जब समुद्र वेलाको छोड रहा था, जब कमल मुँद गये, कुमुद खिलने लगे, चकोर प्रसन्न होने लगी, आकाशमें अवकाश

आकाशे सावकाशे तमसि शममिते कोकलोके सशोके
कंदर्पेऽनल्पदर्पे वितरति किरणाञ्छर्वरीसार्वभौमः ॥ ३ ॥

भविष्ये रामशापेत्यन्तनिकटवर्तिनि कोकलोकानामकस्मान्महोत्पातनिमित्तं पार्श्वस्थितानामपि प्रियाणामनवलोकतः शोकसंभवः ॥

स्वैरं कैरवकोरकान्विदलयन्यूनां मनः खेदय-
न्नम्भोजानि निमीलयन्मृगदृशां मानं समुन्मूलयन् ।
ज्योत्स्नां कन्दलयंस्तमः कवलयन्नम्भोधिमुद्वेलय-
न्कोकानाकुलयन्दिशो धवलयन्निन्दुः समुज्जृम्भते ॥ ४ ॥

अद्यापि स्तनतुङ्गशैलशिखरे सीमन्तिनीनां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहितः ।
उद्यद्दूरतरप्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणा-
त्फुल्लत्कैरवकोशनिःसरदलिश्रेणी कृपाणं शशी ॥ ५ ॥

पाया अन्धकार शान्त हुआ और चक्रवाक जब शोकाकुलित होगये तब रात्रीका चक्रवर्ती राजा चन्द्रमा अपनी किरणोंको फैलाने लगा ॥ ३ ॥

रामके होनहार शापके अत्यन्त निकटवर्ती होनेपर चकवोंके समूहको अकस्मात बडे उत्पातका कारण, समीपमें स्थितभी प्रियजनोंको न देखनेसे शोक उत्पन्न हुआ ॥

अपनी इच्छानुसार चन्द्रविकाशी कमलोंकी कलियोंको खिलाता, तरुण स्त्री पुरुषोंके मनको सन्ताप देता, कमलोंको मूँदता, मृगनयनियोंके मानको शिथिल करता, चांदनीको छिटकाता, अन्धकारको ग्रसता, समुद्रको झकोरता, चकवोंको व्याकुल करता और दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ चन्द्रमा उदयको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मेरा उदय होनेपरभी यह मान स्तनरूप ऊँचे शिखरवाले स्त्रियोंके हृदयमें बैठना चाहता है, इसको धिक्कार है । इस प्रकार क्रोध करके लाल २ हुआ और उदय होती हुई बडी २ किरणोंरूप हाथोंको बढाता हुआ यह चन्द्रमा उदय होतेही खिलानेवाले चन्द्रविकासी कमलोंकी कलीरूप म्यानोंमेंसे निकलती हुई भौरोंकी पंक्तिरूप तलवारको खैंच रहा है ॥ ५ ॥

यातस्यास्तमनन्तरं दिनकृतो वेषेण रागान्वितः
स्वैरं शीतकरः करं कमलिनीमालिङ्गितुं योजयन्।
शीतस्पर्शमवाप्य संप्रति तया युक्ते मुखाम्भोरुहे
हास्येनैव कुमुद्वतीवनितया वैलक्ष्यपाण्डूकृतः॥ ६॥
कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदै-
रक्षालि स्फटिकान्तरैः किमघटि द्यावापृथिव्योर्वपुः।
एतत्तर्कय कैरवक्लमहरे शृङ्गारदीक्षागुरौ
दिक्कान्तामुकुरे चकोरसुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि॥ ७॥
अमृतममृतरश्मेर्मण्डलस्यानुभूय
द्विजचतुरचकोर प्रीतिरङ्गारकेषु।
प्रभवति भवदीया चेद्विधातुर्विधानं
तदिह पुनरपि स्यात्कोऽन्यथाकर्तुमीशः॥ ८॥
चक्रक्रीडाकृतान्तस्तिमिरचयचमूस्फारसंहारचक्रं
कान्तासंहारसाक्षी गगनसरसि यो राजते राजहंसः।

अथवा अस्तको प्राप्त हुए सूर्यके वेषसे लाल हुआ स्वच्छन्द विचरनेवाला, यह चन्द्रमा कमलिनीको आनन्दित करनेके निमित्त युक्ति रचता हुआ शीत स्पर्शको पाकर इस समय उसके मुखरूपी पुष्पको मूँद लेनेपर कुमुदिनीरूप अपनी स्त्रीके द्वारा खिलने रूप हास्यके द्वाराही दिये हुए उलाहनेकी अधिक लज्जासे पीला पडगया है॥ ६॥

चन्द्रविकाशी कमलोंके परिश्रमको हरनेवाले शृंगारकी रचना करनेमें चतुर दिशारूप स्त्रीके दर्पण समान और चकोरके मित्र बर्फके समान श्वेतकान्तिवाले चन्द्रमाके पूर्णरूपसे प्रकाश करनेपर आकाश और पृथ्वीका शरीर क्या कपूरकी धूलियोंसे भर गया? क्या चन्दनोंसे लिप गया? क्या पारेसे धो दिया गया? अथवा बिल्लौरकी शिलाओंसे जड दिया गया॥ ७॥

अरे पक्षियोंमें चतुर चकोर! यदि अमृतमय किरणोंवाले चन्द्रमण्डलके अमृतका स्वाद लेकरभी तेरी प्रीति अंगारोंमें होती है तो इस जगतमें विधाताके कर्तव्यको फिर उलटनेके लिये कौन समर्थ हो सक्ता है॥ ८॥

चकवोंकी क्रीडाको यमराजरूप, अन्धकारके समूहकी सेनाके विस्तारका नाश करनेके लिये चक्ररूप, स्त्रियोंकी पीडाका साक्षी, सम्भोगके आरम्भका सूचक, चन्द्रवि-

सम्भोगारम्भकुम्भः कुमुदवनवधूबोधनिद्रादरिद्रो
देवः क्षीरोदजन्मा जयति रतिपतेर्बाणनिर्वाणशाणः ॥ ९ ॥
इत्याकर्ण्य चन्द्रमण्डलशाणे शाणोत्तीर्णो रतिपतेर्बाणो जानकीरामचन्द्रयोर्वक्षःस्थले निपतति, इति श्लोकाभिप्रायमवगम्य निष्क्रान्तः सर्व आलिजनः । अत्रापि तरुणरात्रौ शुकसारिकादीनां पक्षिणां मधुरस्वरैर्मदनोर्मिः संसूचिता ॥

रामः—

अङ्के कृत्वा जनकतनयां द्वारकोटेस्तलान्ता-
त्पर्यङ्काङ्के विपुलपुलकां राघवो नम्रवक्राम् ।
बाणान्यञ्च प्रवदति जनः पञ्चबाणोऽप्रमाणै-
र्बाणैः किं मां प्रहरति शनैर्व्याहरन्ती जगाम ॥ १० ॥
गाढं गाढं कमलमुकुलं पुण्डरीकाक्षदक्षः—
पीठं काठिन्यमपि कुचयोर्जानकी मानकीर्णा ।

काशी कमलोंके वनरूप वधूको जगानेके कारण निद्रा न देनेवाला कामदेवके बाणोंको तीखा करनेका सानरूप अथवा कामदेवके बाणोंको छोडनेमें सहायता करनेवाला क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न हुआ चन्द्रमा आकाशरूप सरोवरमें राजहंसकी भाँति शोभा प्राप्त कर जयको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

ऐसा सुनकर चन्द्रमण्डलरूपी सानसे तेज हुआ कामदेवका बाण जानकी और श्रीरामचन्द्रके वक्षःस्थलमें गडता है, श्लोकके ऐसे अभिप्रायको समझकर सब सखियोंका समूह तहांसे चलागया ऐसी तरुण रात्रिमेंभी तोते मैना आदि पक्षियोंकी मीठी कूकोंसे कामदेवकी तरंगोंकी सूचना दी ॥

राम—जिनका शरीर रोमाञ्चित होरहा है, और मुख नीचेको नम्र हो गया है; ऐसी जानकीको द्वारकी दहलीजसे गोदमें भरकर रघुनाथजाने पलंगपर ले गये, संसार कामदेवके पांच बाण कहता है, परन्तु वह मुझको असंख्य बाणोंसे क्यों प्रहार कर रहा है, ऐसा धीरेसे कहती हुई जानकीभी चली गई ॥ १० ॥

मुझे स्पर्श मत करो, मुझे स्पर्श मत करो, इस प्रकार कहने लगी । मानको करनेवाली और कामदेवके आवेशोंसे भरी हुई जानकीने अतिगाढ आलिङ्गनके

पूर्णौ कामैः शिथिलमनिलस्यागमायाचकार
नीतं स्फीतं सदयहृदयं स्वामिनालिङ्ग्य मत्वा ॥ ११ ॥

जानकीरामचन्द्रयोः—

अन्योन्यं बाहुपाशग्रहणरसभराशीलिनोस्तत्र यूनो-
र्भूयोभूयः प्रभूताभिमतफलभुजोर्नन्दतोर्जात एषः ।
संसारो गर्भसारो नव इव मधुरालापिनोः कामिनोर्मा
गाढं चालिङ्ग्य गाढं स्वपिहि नहि नहीति च्युतो बाहुबन्धः १२

वक्त्रे ततः फणिलतादलवीटिकां स्वे
विन्यस्य चन्दनघनावृतपूगगर्भाम् ।
रामोऽब्रवीदयि गृहाण मुखेन बाले
तच्छद्मना तदधरं मधुरं प्रमातुम् ॥ १३ ॥

मन्दं मन्दं जनकतनया तां चतुर्धा विधाय
स्वैरं जह्रे तदधरमधु प्रेमतो मीलिताक्षी ।

समय कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजीके वक्षःस्थलरूप शिलाको कमलके समान कोमल और अपने स्तनोंकी कठिनताको मानकर पवन आनेके लिये हृदयको शिथिल कर दिया और स्वामी श्रीरामचन्द्रजीने गाढ आलिङ्गन करके दयायुक्त हृदयके साथ जानकीका स्फीत नामक चुम्बन किया ॥ ११ ॥

(जानकी और रामचन्द्रजीकी क्रीडा) परस्पर कण्ठमें भुजलताओंके डालनेके परम रसको जाननेवाले बार २ परम इच्छित फलको प्राप्त हुए क्रीडा करते हुए तिन दोनों युवा अवस्थावालोंको यह संसार, सारयुक्त नयासा होगया । (राम) तू मुझको गाढ आलिंगन करके शयन कर । (सीता) नहीं नहीं--इस प्रकार मधुर वार्त्ता करनेवाले उन दोनों कामियोंकी भुजाओंका बन्धन शिथिल होगया ॥ १२ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी खैर कपूर और सुपारी सहित पानकी बीडीको अपने मुखमें रखकर उसी बहानेसे जानकीके अधरकी मधुरताको ग्रहण करनेके निमित्त कहने लगे कि हे प्रिये ! अपने मुखसे इसको ग्रहण कर ॥ १३ ॥

प्रेमसे नेत्रोंको मूँदे हुई जानकीने उस बीडीको चार टुकडे करके धीरे धीरे प्रेमके साथ अपनी इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजीके अधरकी माधुरीको ग्रहण किया

मेने तस्यास्तदनु कवलान्धर्मकामार्थमोक्षान्
रामः कामं मधुरमधरं ब्रह्म पीत्वापि तस्याः ॥ १४ ॥
भाति स्म चित्तस्थितरामचन्द्रं सारुन्धती निर्गमशंकयेव ॥
स्तनोपरि स्थापितपाणिपद्मा संजातनिद्रा सरसीरुहाक्षी ॥ १५ ॥

रामः-(तत्र मैथिलसुतोरःस्थलनिक्षिप्तयक्षकर्दमे सानन्दपतितभ्रमरमालोक्य)
मदनदहनशुष्यत्कान्तकान्ताकुचान्तर्हृदि मलयजपंके गाढबद्धाखिलाङ्घ्रिः । उपरि विततपक्षो लक्ष्यतेऽलिर्निमग्नः शर इव कुसुमेषोरेष पुंखावशेषः ॥ १६ ॥

तत्रावसरे-

पृथुलजघनभारं मन्दमान्दोलयन्ती
मृदुचलदलकाग्रा प्रस्फुरत्कर्णपूरा ।
प्रकटितभुजमूला दर्शितस्तन्यलीला
प्रमदयति पतिं द्राग्जानकी व्याजनिद्रा ॥ १७ ॥

और उस बीडीके चार ग्रासोंको धर्म अर्थ काम और मोक्षरूप माना । श्रीरामचन्द्रजीनेभी जानकीके मधुर अधरको इच्छानुसार पीकर ब्रह्मप्राप्तिके समान सुख माना ॥ १४ ॥

निद्राके वशीभूत हुई कमलनयनी जानकी अपने स्तनोंके ऊपर करकमलको रक्खे हुए ऐसी शोभाको प्राप्त हो रही थी मानों चित्तमें स्थित श्रीरामचन्द्रजीको निकलकर चले जानेके संदेहसे रोके हुए है ॥ १५ ॥

रामचन्द्र-(उस समय जानकीके वक्षःस्थलपर लगे हुए सुगन्धद्रव्योंके लेपनमें आनन्दके साथ पडते हुए भा रेको देखकर) कामदेवके तापसे सूखते हुए सुन्दर प्रियाके स्तनोंके मध्य हृदयमें चन्दनके लेपनपर अपने सब चरणोंको गाडनेवाला ऊपर परोंको फैलाये हुए यह भौंरा, जिसकेपर ऊपर शेष रह गये हों ऐसे विंधे हुए कामदेवके बाणके समान प्रतीत होता है ॥ १६ ॥

उसी समयमें अति पुष्ट जंघाओंके भारको धीरेसे हिलाती हुई, जिसके केशोंके अग्रभाग बिखरे हुए हैं, जिसके करनफूल दमक रहे हैं, भुजाओंके मूलभागको प्रकट करती हुई, और स्तनोंकी लीलाको दिखाती हुई कुछ भावको दिखानेके लिये बनावटी निद्रा दिखाती हुई जानकी अपने स्वामीको प्रसन्न करती है ॥ १७ ॥

तामपि दूरस्थां मन्वानः—

तदनु जनकपुत्रीवक्रमालोक्य रामः
पुनरपि पुनरेवाघ्राय चुम्बन्न तृप्तः ।
स्तनतटभुजमूलोरःस्थलं रोमराजि-
मदनसदनमासीच्चुम्बितं पञ्चबाणः ॥ १८ ॥

श्रीरामपादाः—

निद्रालुस्त्रीनितम्बाम्बरहरणरणन्मेखलारावधाव-
त्कंदर्पारब्धबाणव्यतिकरतरलाः कामिनो यामिनीषु ।
ताटंकोपान्तकान्तग्रथितमणिगणोद्गच्छदच्छप्रभाभि-
र्व्यक्ताङ्गास्तुङ्गकम्पा जघनगिरिदरीमाश्रयन्ते श्रयन्ते ॥ १९ ॥

जानकी प्रबुद्धा—

स्पृहयति च बिभेति प्रेमतो बालभावा-
न्मिलति सुरतसङ्गेऽप्यङ्गमाकुञ्चयन्ती
अहह नहि नहीति व्याजमप्यालपन्ती
स्मितमधुरकटाक्षैर्भावमाविष्करोति ॥ २० ॥

(इसपरभी अपनेसे दूर स्थित हुई मानते हुए) तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी जानकीके मुखको देखकर बार २ सूँघ और चुम्बन करकेभी तृप्त न हुए तथा स्तनोंके निकट भुजाओंके मूलसे वक्षःस्थल रोमावली और मदनसदनकाभी चुम्बन किया जिसको कि पंचबाण चुम्बन कहते हैं ॥ १८ ॥

कामी श्रीरामचन्द्रजी–रात्रियोंमें निद्राके वशीभूत हुई प्रियाकी कमरके वस्त्रको हटानेसे शब्द करती हुई तागडीके शब्दसे दौडनेवाले कामदेवके चढाये हुए बाणके भयसे अपनी रक्षा करनेको घबडाये हुए करणफूलके चारों ओर जडे हुए मणियोंके समूहसे निकलती हुई कान्तियोंसे जिनके देह प्रकट होगये हैं इसी कारण अत्यन्त कांपते हुए जंघारूप पर्वतकी गुफाका आश्रय करते हैं ॥ १९ ॥

जानकी (जगकर) प्रेमसे इच्छा करती है परन्तु बालभावके कारण डरती है और सुरतके प्रसंगमें शरीरको सकोडती हुई मिलतीभी है। एवं अहह ह नहीं २ इस प्रकार ऊपरके चित्तसे कहती हुई मुसकुरानसे मधुर कटाक्षोंके द्वारा रतिभावको प्रकट करती है ॥ २० ॥

निधुवनघनकेलिग्लानिभावं भजन्त्या
रमणरभसशंकातंकिचेतः प्रियायाः ।
अधरदशनसर्पत्सीत्कृतायाा धृतायाः
पिब पिब रसनां मे कामतो निर्विशंकम् ॥ २१ ॥

रामः–(सानन्दं जानकीवाग्विलाससुल्लासयति लालित्यशालिनालापेन)

वाचां गुम्फेन रम्भाकरकमलदलोदारसञ्चारचञ्च-
त्तन्त्रीसंजातमञ्जुस्वरसरसतरोद्गारताराक्षरेण ।
प्रत्यग्रोन्निद्रनाकद्रुमकुसुमनवामोदसंवादमैत्री-
पात्रीभूतेन धात्रीं सुरभयति चरस्थावरां रामराज्ञी ॥ २२ ॥

अथ रामस्तामाह्लादयति–

अरण्यं सारङ्गैर्गिरिकुहरगर्भाश्च हरिभि-
र्दिशो दिङ्मातङ्गैः श्रितमपि वनं पंकजवनैः ।
प्रियाचक्षुर्मध्यस्तनवदनसौन्दर्यविजितैः
सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणम् ॥ २३ ॥

हे प्रिये ! सुरतकी घनी क्रीडासे ग्लानिभावको प्राप्त होनेवाली रमणके वेगकी शंकासे भयभीत चित्तवाली, ओठको खण्डित करनेसे जिसके सिसकारी निकल रही है ऐसी पकडी हुई मेरी रसनाको तुम निःशंक होकर बार बार यथेच्छ पीओ॥२१॥

रामचन्द्र–(आनन्दके साथ जानकीके वाग्विलासको ललित भाषणसे शोभित करते हैं) रामचन्द्रकी रानी जानकी रम्भाके करकमल अंगुलीरूप पत्तोंके सुन्दर चलनेसे बजती हुई वीणाके स्पष्ट मनोहारी स्वरसेभी अधिक स्वादवाले उद्गारनामक गानमें स्पष्ट अक्षरयुक्त तत्काल खिले हुए कल्पवृक्षके फूलोंकी नई सुगन्धिरूप वचनचातुरीकी पात्र वाणियोंके गुच्छोंसे स्थावर और जङ्गमोंसे भरी हुई पृथ्वीको सुगन्धित कर रही है ॥ २२ ॥

रामचन्द्र–(अब जानकीको रिझाते हैं) हे प्रिये ! तेरे नेत्र, कमर, स्तन और मुखकी सुन्दरताने जिनको जीत लिया है, ऐसे हिरनोंने वनका, सिंहोंने पर्वतोंकी गुफाओंके मध्यभागोंका, दिग्गजोंने दिशाओंका और कमलोंके समूहने जलका आश्रय कर लिया है, क्यों कि सत्पुरुषोंके मानका खण्डन होनेपर या तो उनका मरण होना अच्छा है, नहीं तो कहीं दूरको तो चलाही जाना उचित है ॥ २३ ॥

वक्त्रं वनान्ते सरसीरुहाणि भृङ्गाक्षमालां जगृहुर्जपाय।
एणीदृशस्तेऽप्यवलोक्य वेणीमङ्गं भुजङ्गाधिपतिर्जुगोप॥ २४॥
स्वर्णं सुवर्णं दहने स्वदेहं चिक्षेप कान्तिं तव दन्तपंक्तिम्।
विलोक्य पूर्णं मणिबीजपूर्णं फलं विदीर्णं ननु दाडिमस्य॥ २५॥
वदनममृतरश्मिं पश्य कान्ते तवोर्व्या-
मनिलतुलनदण्डेनास्य वार्धौ विधाता।
स्थितमतुलयदिन्दुः खेचरोऽभूल्लघुत्वा-
त्क्षिपति च परिपूर्त्यै तस्य तारा किमेताः॥ २६॥

जानकी-(सानन्दं सोत्कंठा च प्राणवल्लभमाह्लादयन्ती)
रमणचरणयुग्मं तावकं भावयित्वा
मधुरगिरमुदारं रामदासी ब्रवीमि।
कृतमपि गुरु धात्राऽऽस्वाद्य निर्णीयतां मे
वदनममृतरश्मेर्मण्डलं वा प्रियेण॥ २७॥

कमलोंने तुझ मृगनयनीके मुखको देखकर (ऐसी ही सुन्दरता पानेकी अभिलाषासे) जलके भीतर जपरूप अनुष्ठान करनेके लिये भौंरोंकी पंक्तिरूप रुद्राक्षकी मालाको ग्रहण कर लिया है। और सर्पराज वासुकिनेभी तेरी वेणीको देखकर अपने शरीरको (पातालमें जाकर) छुपाया है॥ २४॥

हे प्रिये ! सुन्दर वर्णवालेभी सोनेने तेरी कान्तिको देखकर अपने शरीरको अग्निमें डाल दिया। मणियोंकी समान दानोंसे भराभी अनारका फल तेरे दांतोंकी पंक्तिको देखकर (लज्जासे) फटगया है॥ २५॥

हे प्रिये ! जब ब्रह्माजीने भूतलपर स्थित तेरे मुख और क्षीरसमुद्रके भीतर अमृतमय किरणवाले चन्द्रमाका पवनरूप तुला (तराजू) की दण्डीकेद्वारा तोला तो चन्द्रमा तेरे मुखकी अपेक्षा हलका होनेके कारण आकाशको उठगया तब उस कमीको पूरा करनेके लिये ब्रह्माजीने यह सकल तारागण चढाये; परन्तु यह हैं ही कितने?॥ २६॥

जानकी-(आनन्दके साथ उत्कण्ठित होकर प्राणप्रियको रिझाती हुई) हे नाथ ! आपके दोनों चरणोंका ध्यान करके मैं आपकी दासी उदारतायुक्त मधुर वचन कहती हूँ कि-हे प्रिय ! ब्रह्माने तो मेरे मुखको गौरवयुक्त करही दिया है, परन्तु अब आपभी मेरे मुख और अमृतभरी किरणोंवाले चन्द्रमंडलका स्वाद लेकर निश्चय कर दीजिये (कि स्वाद किसमें अधिक है)॥ २७॥

रामः—(सानन्दम्)

सीतां मनोहरतरां गिरमुद्गिरन्ती-
मालिङ्ग्य तत्र बुभुजे परिपूर्णकामः ।
रामस्तथा त्रिभुवनेऽपि यथा न कोऽपि
रामां भुनक्ति बुभुजे न च भोक्ष्यतीशः ॥ २८ ॥

मृदुसुरभिसुवर्णस्फीतकक्षापुटोद्य-
ल्ललितभुजलतायाः संपुटालिङ्गितायाः ।
सुरतरसवशाया राघवस्य प्रियाया
हरति हृदयतापं कापि दिव्या स्तनश्रीः ॥ २९ ॥

आगामिदीर्घविरहश्चिरमाविरासी-
ज्ज्ञात्वैव रङ्गभवनेऽद्भुतकामकेलिः ।
श्रुत्वा तयोर्गिरमपूजयदोतुपत्नी-
मुद्गीर्णकर्णसरणां चरणायुधानाम् ॥ ३० ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके रामजानकीविलासो द्वितीयोऽङ्कः ॥ २ ॥

रामचन्द्र—(आनंदित होकर) परम मनोहर वचन उच्चारण करती हुई सीताको हृदयसे लगाकर परिपूर्णकाम रामने सीताको इस प्रकार सेवन किया कि जैसे कोई स्वामी बनकर स्त्रीको न अब भोगता है, न पहिले भोगा और न आगेको भोगेगा॥२८॥

कोमल और सुगन्धित सुवर्णकी समान सुरूप बगलेंमेंसे निकली है, सुन्दर भुजलता जिसके ऐसी, सम्पुट नामक आलिङ्गनकी विधिसे हृदयमें लगाई हुई और रतिके रससे वशमें हुई प्रिया जानकीके स्तनोंकी अकथनीय कोई दिव्य शोभा श्रीरघुनाथजीके हृदयकी कामवेदनाको हरती है ॥ २९ ॥

वनवासरूप लम्बा वियोग होनेवाला है मानो ऐसा जानकरही उन दोनोंकी कामक्रीडा चिरकालतक प्रकट होती रही इतनेहीमें मुरगे और उनके शब्दको सुनकर उधरकोही कान लगाकर जानेवाली बिल्लीका शब्द सुनकर जानकीने बिल्लीका पूजन किया (इसके द्वारा मुरगोंका अभाव होनेपर प्रातःकाल न होगा और रात्रि अनन्त हो जायगी जिससे कि स्त्रियें अपने पतियोंके साथ निरन्तर सुरतसुखको पावेंगी)॥३०॥

इति श्रीहनुमन्नाटकभाषाटीकामें रामजानकी विलासनामका द्वितीय अंक समाप्त ।

तृतीयोऽङ्कः ।

भुक्त्वा भोगान्सुरंगान्कतिपयसमयं राघवो धर्मपत्न्या
सार्धं वर्धिष्णुकामः श्रवणमुनिपितुः प्राप हा! शापकालम् ।
धत्ते तस्मिन्विवस्वान्मलिनकिरणतां हा महोत्पातहेतो-
रुल्कादण्डः प्रचण्डः प्रपतति नभसः कम्पते भूतधात्री ॥ १ ॥
दिग्भागो धूसरोऽभूदहनि बहुतरस्फारताराः स्फुरन्ति
स्वर्भानोर्भानवीयं ग्रहणमसमये रौधिरी बिन्दुवृष्टिः ।
मध्याह्नोर्ध्वास्यकोशश्वगणरुतमतिस्फीतफेरुप्रचारो
वारंवारं गभीरप्रलय इव महाकालचीत्कारघोरः ॥ २ ॥

कैकेयी (आत्मगतम्)

प्रातः किल मद्वाग्बन्धकालस्तर्हि द्रुतं राजानं भरतराज्यं प्रार्थयामि न खलु कालक्षेपः श्रेयसे (रहसि उपगम्य प्रकाशम्) राजन्नमङ्गलीरियं वधूर्यतोऽस्या आगमनमात्रेण महोत्पाताः सम्भवन्तीति ।

भक्तोंके पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी धर्मपत्नी सीताजीके साथ कुछ समयतक आनन्दपूर्वक भोगोंको भोग, मनकी अभिलाषाके पूरा विना हुएही श्रवणमुनिके पिता यज्ञदत्तनामक वैश्य तपस्वीके शापका समय आतेही सूर्यकी किरणें मलीन होगई । हा ! उस महोत्पातके कारण आकाशसे बडी भारी वर्षा होने लगी और पृथ्वी काँप उठी ॥ १ ॥

दिशाओंका मध्यभाग धुँधला हो गया, दिनमेंही बडे २ तारे चमकने लगे । असमयमें राहुसे सूर्यका ग्रहण होने लगा, रुधिरकी बूँदोंकी वर्षा होने लगी, मध्याह्नकालमें कुत्ते ऊपरको मुख करके रोने लगे । बहुतसे गीदड इधर उधर फिरने लगे । और घोर प्रलयकी समान महाकालका भयानक चीत्कार शब्द वार २ होने लगा ॥ २ ॥

कैकेयी (अपने मनमें) ओः अपनी वाणीसे महाराजको बाँध लेनेका मेरा समय आ पहुँचा, तो अब शीघ्रही महाराजसे भरतकुमारके लिये राज्यको माँगूँ । निस्संदेह अब देर करनेमें भलाई नहीं है, (एकान्तमें राजा दशरथके समीप जाकर प्रकाशरूपसे) महाराज ! यह आपकी पुत्रवधू सीता सुलक्षणा नहीं है, क्योंकि इसके आने मात्रसेही कैसे बडे २ उत्पात होरहे हैं ॥

तानुत्पातानवेक्ष्य क्षितिपमथ दशस्यन्दनं क्रन्दयन्ती
लोकाञ् शोकानलौघैः शिव शिव तरसा भस्मसात्कुर्वतीव ।
कैकेयी वाचमूचे निखिलनिजकुलाङ्गारमूर्त्तिः ससीतः
शान्त्यै पुत्रस्य राज्यं भवतु वनमभिप्रेष्यतामेष रामः ॥ ३ ॥

दशरथः—(सकरुणस्त्रीवचनस्वीकरणं मरणोत्साहं नाटयन्महतीं मूर्च्छा-मासाद्य धरणीतलमुपगतः कथमपि चेतनामुपलभ्य)

रामं कामाग्रजमिव वनं प्रस्थितं वीक्ष्य शक्तो
धर्त्तुं प्राणाञ् शिव शिव कथं तान्विहायाथ वाहम् ।
निर्मुक्तः स्यां वचनमनृतं तत्पुनर्नान्यथा मे
भूयाद्भूयस्तदनु वचनं हा बभाषे तथेति ॥ ४ ॥

रामभरतौ स्वं स्वं कालमधिगम्य हर्षशोकौ नाटयन्तौ गुरोर्गिरा जटावल्कलच्छत्रचामरधारिणौ वनप्रस्थानराज्याभिषेकारम्भाय राजानं दशरथं नमस्कर्त्तुमवतरतः ।

उन उत्पातोंको देख विलाप करती हुई हे शिव ! हे शिव ! राजा दशरथको तथा सब लोकोंको मानो शोकरूपी अग्निके समूहोंसे भस्म करती हुई अपने कुलके लिये अङ्गारकी मूर्तिके समान रानी कैकेयी यह वचन कह उठी कि. ये रामचन्द्र उत्पातोंसे होनेवाले दोषोंकी शान्तिके लिये कुलक्षण सीतासहित वनको चले जायँ और मेरे पुत्रको राज्य हो ॥ ३ ॥

दशरथ—(बडी करुणाके साथ स्त्रीके वचनको स्वीकार करनेरूप मरणका उत्साहसा दिखाते हुए बडी भारी मूर्च्छाको प्राप्त होकर भूतलपर गिरपडे । फिर बडी कठिनतासे सावधान हो) कामदेवके बडे भाईतुल्य परम सुन्दर श्रीरामचंन्द्रजीको वनको जाते हुए देख हाय ! हाय ! मैं अपने प्राणोंको कैसे रख सकूंगा और प्राणोंको न छोडकरभी तो मैं झूँठा हो जाऊँगा । नहीं नहीं ! मेरा वचन झूँठा नहीं होना चाहिये, हाय ! हाय ! ! अच्छा कैकेयी ! जैसा तूने कहा है वैसाही हो ऐसा कह कैकेयीका कहना मान लिया ॥ ४ ॥

रामचन्द्र और भरत अपने २ समयपर रंगभूमिमें आकर हर्ष और शोकका भाव दिखाते हुए महाराज दशरथको प्रणाम करनेके लिये आये । उस समय अपने पिता महाराज दशरथकी आज्ञासे जटा और वल्कलरूप छत्र और चामरको धारण

तत्र भरतः-

हा तात मातरहह ज्वलितानलो मा
कामं दहत्वशनिशैलकृपाणबाणः ।
मन्थन्तु तान्विसहते भरतः सलीलं
हा रामचन्द्रपदयोर्न पुनर्वियोगम् ॥ ५ ॥

रामः-

मां बाधते नहि तथा गहनेषु वासो
राज्यारुचिर्जनकबान्धववत्सलस्य ।
रामानुजस्य भरतस्य यथा प्रियायाः
पादारविन्दगमनक्षतिरुत्पलाक्ष्याः ॥ ६ ॥
श्रुत्वा सुमन्त्रवचनेन सुतप्रयाणं
शापस्य तस्य च विचिन्त्य विपाकवेलाम् ।
हा राघवेति सकृदुच्चरितं नृपेण
निश्वस्य दीर्घतरमुच्छसितं न भूयः ॥ ७ ॥

किये रामचन्द्र और भरत दोनोंही वन गमन और राज्याभिषेकके लिये उद्यत हुए, उस समय भरत-हा पितः ! हा मातः ! हाय हाय ! चाहे जलती हुई अग्नि मुझे भलेही भस्म कर डाले, वज्र, पर्वत, तलवार और बाण मुझको भलेही मथ डालें भरत उनको सह सक्ता है; परन्तु हाय ! श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका वियोग मुझसे नहीं सहा जायगा ॥ ५ ॥

रामचन्द्र-मुझको वनोंमें अपना बसना वैसा कष्ट नहीं देता ह, और पिता दशरथ तथा मुझमें प्रेम करनेवाले मेरे छोटे भ्राता भरतका राज्यको स्वीकार न करनाभी वैसा दुःखदायक नहीं है, जैसा कि कमलनयनी प्यारी सीताका चरणकमलोंसे विचरनेका दुःख कसकता है ॥ ६ ॥

मन्त्री सुमन्तके कहनेसे पुत्रका वनको जाना सुनकर और उस यज्ञदत्तके शापके परिपाकका समय विचारकर राजा दशरथने हा राम ! ऐसा एक बार कहकर एक ऐसा लम्बा श्वास लिया कि फिर और श्वासभी न आया (अर्थात् एक बारही राम ! कहकर दशरथने प्राण त्याग दिये) ॥ ७ ॥

मातस्तातः क्व यातः सुरपतिभुवनं हा कुतः पुत्रशोका-
त्कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य।
प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किं तथासौ बभाषे
मद्वाग्बद्धः फलं ते किमिह तव धराधीशता हा हतोऽस्मि ॥ ८ ॥
गुरोर्गिरा राज्यमपास्य तूर्णं वनं जगामाथ रघुप्रवीरः ।
निषंगपृष्ठः शरचापहस्तस्तं लक्ष्मणो गामिव बालवत्सः ॥ ९ ॥
गुर्वाज्ञापरिपालनाय च वनं संप्रस्थितं राघवं
दृष्ट्वासौ त्वरिता विदेहतनया श्वश्रूजनं पृच्छति ।
नत्वा कोसलकन्यकांघ्रियुगलं पश्चात्सुमित्रां पुन-
र्दृष्ट्वा हा शुकसारिकापिककुलं रामानुगा प्रस्थिता ॥ १० ॥
रामे प्राप्ते वनान्तं कथमपि भरतश्चेतनां प्राप्य तातं
नीत्वा देवेन्द्रलोकं मुनिजनवचनादूर्ध्वदेहक्रियाभिः ।

भरत–हे मातः ! पिताजी कहां गये ? कैकेयी–इन्द्रलोकको। भरत–हाय ! क्यों ? कैकेयी पुत्रके शोकसे ! भरत–चारोंमेंसे कौनसा पुत्र ? कैकेयी–जिनके पीछे तुम्हारा जन्म हुआथा (वह राम)। भरत–उन्हें क्या हुआ ? कैकेयी–वे तो वनको गये। भरत–क्यों ? कैकेयी–महाराजकी आज्ञासे । भरत–उन्होंने ऐसी आज्ञा क्यों दी ? कैकेयी–मेरे वचनोंके बँधे हुए थे (इस कारण)। भरत–इसमें तुझे क्या फल मिला ? कैकेयी–तुम्हारा राजा होना। भरत–हाय ! मैं मारा गया॥८॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे राज्यको त्याग शीघ्रही पीठपर तरकस लगाय हाथमें धनुष बाण लिये वनको चल दिये और जैसे गौके पीछे छोटासा बछडा जाता है तैसेही श्रीलक्ष्मणजीभी उनके पीछे २ हो लिये ॥ ९ ॥

पिताजीकी आज्ञाके पालनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीको वन जाते देख यह विदेहसुता सीताभी शीघ्रतासे अपनी सासोंके पास जाकर बूझने लगी. पहिले कौशल्याके दोनों चरणोंमें प्रणाम करके पीछे सुमित्राकोभी प्रणाम कर आज्ञा ली। हा ! फिर पोसे हुए तोते, मैना, कोकिला आदिकी ओरको निहारती हुई सीता अपने प्राणनाथ श्रीरामचन्द्रजीके पीछे २ चल दीं ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वनको चले जानेपर भरतजी बडी कठिनतासे सावधान हो वशिष्ठ आदि मुनियोंके कहनेसे पिता दशरथजीको और्ध्वदैहिक क्रियाओंके द्वारा

भ्रातुः शोकाज्जटावानजिनवृततनुः पालयामास नन्दि-
ग्रामे तिष्ठन्नयोध्यां रघुपतिपुनरागामिभोगाय वीरः ॥ ११ ॥

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्‌ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥ १२ ॥

रामः—

आदावेव कृशोदरी कुचतटीभारेण नम्रा पुन-
र्लीलाचंक्रमणं च नैव सहसे दोलाविधौ श्राम्यसि।
स्रोतःकाननगर्तनिर्झरसरित्प्रायानपूर्वानिमा-
न्भूभागानपि भूतभैरवमृगान्वैदेहि यायाः कथम् ॥ १३ ॥

अरुणदलनलिन्या स्निग्धपादारविन्दा
कठिनतनुधरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्ती।
अवनि तव सुतेयं पादविन्यासदेशे
त्यज निज कठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम् ॥ १४ ॥

स्वर्गलोकमें पहुँचाकर और भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके वनसे आकर फिर भोगनेके लिये वीरताके साथ अयोध्याका शासन करते रहे ॥ ११ ॥

सिरसके फूलके समान कोमल अंगवाली सीता अयोध्यापुरीके समीपकी भूमिमें शीघ्रतासे तीन चार पग चलकरही वारवार पूछने लगी कि कितनी दूर और चलना है ? और यों कहकर श्रीरामचन्द्रजीके आंसुओंका प्रथम जन्म करती हुई ॥ १२ ॥

राम-प्रथमसेही कृशोदरी है, तिसपर कुचतटोंके भारसे झुकी जाती है इस कारण क्रीडाके लिये घरमेंभी नहीं फिर सक्ती थी, और झूला झूलनेके समयभी थक जाती थी फिर जिनमें जहां तहां झरने, झाडी, गडहे और पहाडी नदियें पडती हैं, ऐसे प्राणियोंके डरानेवाले, पशुओंसे भरे इन भूमिके प्रदेशोंमें हे वैदेही ! तुम कैसे चल सकोगी !! १३ ॥

पृथ्वि ! यह लाल दलोंवाली कमलिनीके समान चारों ओरसे चिकने चरण-कमलवाली सीता भूमिकी कठिनताके कारण पग २ पर ठोकरें खाती हुई चल रही है

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता ॥ १५ ॥

घुसृणमसृणपादा गम्यते भूः सदर्भा
विरचय शिवजातं मूर्ध्नि धर्मः कठोरः ।
इति ह जनकपुत्री लोचनैरश्रुगर्भैः
पथि पथिकवधूभिर्वीक्षिता शिक्षिता च ॥ १६ ॥

(तत्र चित्रकूटे जानकी सकरुणं सबाष्पम्)

मूर्ध्ना बद्धजटेन वल्कलभृता देहेन पादानतिं
कुर्वाणे भरते तथा प्ररुदितं तारस्वरैः सीतया ।
येनोद्विग्नविहङ्गनिर्गततरुर्निःसंमदः श्वापदः
शैलेन्द्रोऽपि किलैष भूरिभिरभूत्साश्रुः पयःप्रस्रवैः ॥ १७ ॥

इस कारण तू अपनी पुत्रीके चरण रखनेके स्थानमें कठोरताको त्याग दे, देख यह जानकी वनको जारही है ॥ १४ ॥

मार्गमें बटोहियोंकी स्त्रियोंने जब आदरके साथ यह पूछा कि हे आर्ये ! यह नीलकमलके समान नेत्रवाले तुम्हारे कौन हैं ? तब हँसके लज्जासे मुखको नीचा करती हुई जानकीने मानो स्पष्टही उत्तर दे दिया (अर्थात् जब जानकीने लज्जाके कारण कुछ उत्तर न देकर मुखको नीचा कर लिया तब स्त्रियें समझगई कि ये इनके पति हैं) ॥ १५ ॥

कमलकी कलियोंके समान कोमल चरणवाली तू कुशोंसे भरी हुई भूमिपर चल रही है, मस्तकपर कठोर धूप है, इस कारण शिरपर छत्र और चरणोंमें पादुका धारण कर ले इस प्रकार पथिकोंकी स्त्रियोंने आँखोंमें आँसू भरकर जानकीकी ओर देखकर उसे शिक्षा दी ॥ १६ ॥

(चित्रकूटपर पहुँच जानकी करुणाके साथ) मस्तकपर जटा बांधे शरीरपर भोजपत्र लपेटे भरतजीने जब श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया तब सीता इस प्रकार ऊँचे स्वरसे रोई कि, जिसके कारण वहांके वृक्षोंमेंसे पक्षी व्याकुल होकर उडगये, जंगली हिंसक जीव सुस्त होगये और यह चित्रकूट पर्वतभी मानो उसी दुःखसे बहुतसे जलके झरनेरूप आंसुओंकी धाराओंसे रोने लगा ॥ १७ ॥

(तत्रैव सुमित्रा लक्ष्मणं प्रति)

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
योध्यामटवीं विद्धि गच्छ पुत्र यथासुखम् ॥ १८ ॥

सीता–

पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेहा–
मलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम् ।
त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्तः ॥

वैदेही–(अदृष्टराजमन्दिराद्बहिर्व्यवहारतया बालभावाच्च दैवयोगात् नौका-
सुखमनुभूय वने चरन्ती स्थलेऽपि भाराक्रान्ता सती नौः प्रचरतीति
मन्यमानास्माभिरतः परमनयैव सुखप्रयाणं कर्त्तव्यं न
पद्भ्यामिति बुद्ध्या राममधिकृत्याब्रवीत्) ॥

उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापा–
दियमपि मुनिपत्नी शापिता कापि वा स्यात् ।

(वहांही सुमित्रा लक्ष्मणजीसे कहने लगी) हे पुत्र ! अब तू रामचन्द्रजीको पिताके समान जानकीको मुझ माताके समान और वनको अयोध्या मान, सुखके साथ यात्रा कर ॥ १८ ॥

जब कि, गौतमजीको तुम्हारे चरणकमलोंकी रजोंसे पाषाणशरीर छोड दिव्य देहवाली अहिल्यापत्नी मिल गई तो अब जिसमें चारों ओर शिला फैली पडी है, ऐसे इस विन्ध्याचलकी तलैटीपर तुम्हारे विचरनेके कारण न जाने कितने तपस्वी स्त्रीवाले हो जायँगे, अर्थात अब जिन २ शिलाओंपर आपके चरणोंका स्पर्श होगा वेभी दिव्य स्त्रियें बनकर ऋषियोंकी पत्नीयें बन जाँयगी ॥ १९ ॥

विदेहकुमारी जानकीने राजमन्दिरसे बाहरका कोई व्यवहार नहीं देखा था, इस कारण तथा बालस्वभावसे जब दैववश वनवासके समय तमसानदीको पार होते हुए नौकामें बैठकर चली तब थलमेंभी बोझेसे लदी हुई नौका चलती होगी यह समझकर हम अब आगेभी इस नौकाहीमें बैठकर सुखसे यात्रा करेंगे, पैदल नहीं चलेंगे ऐसी बुद्धिसे रामचन्द्रजीकी ओरको कहने लगी।

गौतमऋषिके शापसे पाषाणका शरीर पानेवाली अहल्याके समान यह नौकाभी

चरणनलिनसङ्गानुग्रहं ते भजन्ती
भवतु चिरमियं नः श्रीमती पोतपुत्री ॥ २० ॥
दृष्ट्वातिदैन्यं जनकात्मजाया-
स्तत्रैव रामः सह लक्ष्मणेन ।
गोदावरीतीरसमाश्रितेषु
वनेषु चक्रे निजपर्णशालाम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मणः-

एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी ।
गोदा यत्र नटी तरङ्गिततटी कल्लोलचंचत्पुटी
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी ॥ २२ ॥

यदि शापको प्राप्त हुई किसी मुनिकी स्त्री हो तो आपके चरणकमलके संगका उपकार मानती हुई चिरकालतक हमको सुख देनेवाली हो जाय ॥ २० ॥

लक्ष्मणजीके साथ जाते हुए रामचन्द्रजीने इस प्रकार जानकीकी अतिदीनताको देखकर वहांही गोदावरीके तटकी भूमिके वनोंमें अपनी कुटी बनाई ॥ २१ ॥

लक्ष्मणजी—हे रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! बडके पांच वृक्षोंका झुंड यह पंचवटी हमारी कुटीके योग्य है, क्योंकि इन पांचों वटके वृक्षोंकी जडोंमें सरस्वती-के पांच कुण्ड हैं यहां बटोहियोंको जल छाया आदि मिलता है इसके दोनों ओर बडी सुन्दर भूमि है स्त्री पुत्रादिकी मायामें फँसेहुए पुरुषोंके क्लेशको दूर करनेवाली औषधमय वटिकारूप है, इसके समीपमेंही गोदावरी नाचती हुई बहती चली जा रही है, जिस गोदावरीके तटोंपर तरंगें उठ रही हैं सोतोंमेंसे कल्लोलोंका शब्द हो रहा है, पद्मकी गन्धकी तो यह गोदावरी मानो कुप्पी है संसारसागरकी नौका है और प्राणियोंको साधारण कर्मोंके फलोंसे तो इसका मिलनाही कठिन है ॥ दूसरा अर्थ हे महाराज रामचन्द्रजी ! यह स्थान कुटी बनानेके योग्यही है, क्योंकि यह पृथिवी जल, तेज, वायु, और आकाश रूप पांच तत्वोंकी नाश करनेवाली है, अर्थात् यहां आकर साधन करनेवाले पुरुषोंकी मोक्ष हो जाती है जहां रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दरूप इन्द्रियोंके ये विषय सहजहीमें जीत लिये जाते हैं मोक्षमार्गमें यात्रा करनेवालोंको यह पंचवटी अनुपम घटी अर्थात् विश्रामका स्था

क्रीडाकल्पवटं विसर्पितजटं विश्वाम्बुजन्मावटं
पिष्टाण्डौघघटं धृतांघ्रिशकटं ध्वस्तक्षमासंकटम् ।
विद्युच्चारुरुचाविधूतकपटं सीताधरालम्पटं
भिन्नारीभघटं विरुग्णशकटं वन्दे गिरां दुर्घटम् ॥ २३ ॥

अथ मारीचः-

(अतीतानागतवर्तमानत्रिकालदर्शनो लंकापतेराज्ञामासाद्य चिन्तयामास)

रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः ॥ २४ ॥

है, यहांकी वेदका प्रचार करनेवाली मुनियोंकी सभा प्रसिद्ध है, जिस मुनिसभामें समिधा और कुशही सम्पत्ति मानी जाती है. जो मुनिसभा ज्ञानदानके द्वारा स्त्री पुत्रादिकी ममताको काटनेमें वज्रके समान है और जो त्यागी जीवोंको तारनेमें तीर्थके समान है जिस मुनिसभाकी कुंजोंमें इधर उधर देवता विचरते हैं जो स्वाभाविक वासनाओंको काटनेवाली है इस कारणही संसारसे तारनेमें नौकारूप और बहुतसे पुण्योंके विना प्राणियोंको दुष्प्राप्य है ॥ २२ ॥

(तदनन्तर मार्गकी थकावट दूर होनेपर जानकी कुटीकी रचनासे आनन्दित हो पुराणपुरुष श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करती है) देव मनुष्यादि अवताररूप क्रीडाके कल्पवृक्ष विश्वरूप शरीरको प्रकट करनेवाले, निर्लेपभावसे विश्वरूप कमलको प्रफुल्लित करनेके निमित्त सूर्यकी तुल्य ब्रह्माण्डोंके समूहको चूर्ण करनेवाले केवल अपने चरणरूप अवलम्बको हृदयमें धारण करनेवाले भक्तोंको संसारसे तारनेके निमित्त नौकारूप अतएव जिन्होंने शान्तिशील, अम्बरीष आदिके संकटको नष्ट किया, जिनके शरीरकी बिजलीकी समान सुन्दर दमकनेवाली कान्तिसे मायाका आवरण दूर होगया है, सीताके अधरके लोभी तथापि जिन्होंने कामादि शत्रुरूप मतवाले हाथियोंके समूहोंको छिन्न भिन्न करडाला है ऐसे बडे २ दैत्योंका विशेषरूपसे नाश करनेवाले वाणीके अगोचर श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर मारीच-(भूत होनहार और वर्तमान तीनों कालोंके वृत्तान्तको जाननेवाला, लंकापति रावणकी आज्ञा पाकर विचारने लगा) यदि जब राम और रावण दोनोंहीके हाथसे मरना अवश्य है, ऐसी दशामें रामचन्द्रजी अच्छे हैं, रावण नहीं ॥ २४ ॥

सुललितफलमूलैस्तत्र कालं कियन्तं
दशरथकुलदीपे सीतया लक्ष्मणेन ।
गमयति दशकण्ठोत्कण्ठितप्रेरितं द्रा-
क्कनकमयकुरङ्गं जानकी संददर्श ॥ २५ ॥

देहं हेममयं हरिन्मणिमयं शृङ्गद्वयं वैद्रुमा-
श्चत्वारोऽपि खुरा रदच्छदयुगं माणिक्यकान्तिद्युति ।
नेत्रे नीलसुतारके सुविततें तद्वच्चलं प्रेक्षितं
तत्तद्रत्नमयं किमत्र बहुना सर्वाङ्गरम्यो मृगः ॥ २६ ॥

साङ्गं मायाकुरङ्गं द्रुतनिधननिशाचारिमारीचमग्रे
धावन्तं संचरन्तं क्षणमपि गहने जानकी याचते स्म ।
रामं कामाभिरामं निशितशरधनुर्धारिणं लक्ष्मणेन
क्षिप्रं तद्रक्षणायोल्लिखिततटभुवा सोऽप्यगात्तद्वधाय ॥ २७ ॥

इति हनुमन्नाटके मारीचागमनो नाम तृतीयोऽङ्कः ॥ ३ ॥

सीता और लक्ष्मणसहित दशरथकुलदीपक श्रीरामचन्द्रजीने उस पंचवटीमें सुन्दर फल फूलोंसे विहार करते २ कितनाही समय बितादिया तदनन्तर जानकीने उत्कंठाके साथ रावणके भेजे हुए सोनेके मृगको अचानक देखा ॥ २५ ॥

उस मृगका सब शरीर सुवर्णका, दोनों सींग मरकतमणिके, चारों खुर मूंगोंके, दोनों ओठ मोतियोंकी कान्तिसे दमकते हुए, दोनों नेत्र सुन्दर नीली पुतलीयुक्त तथा अति विशाल थे, उस हिरनका चारों ओरको देखना अति चंचलतायुक्त था, और वह सभी अंगोंमें रत्नमय था, अधिक क्या कहैं उस मृगके सभी अङ्ग सुन्दर थे ॥ २६ ॥

समस्त अंगोंमें मायासे मृगका रूप धारण करनेवाले प्रतिक्षणमें आगे आकर दौडते और वनमें विचरते हुए तथा शीघ्रही जिसकी मृत्यु होनेवाली है, ऐसे मारीच राक्षसको जानकीने, कामदेवकी समान सुन्दर और तीखे धनुषबाणको धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे मांगा तब श्रीरामचन्द्रभी तत्काल जानकीकी रक्षाके लिये, धनुषकी नोंकसे पृथ्वीपर रेखा खींचनेवाले लक्ष्मणजीके सहित उस मृगका वध करनेको चले गये ॥ २७ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटक भाषाटीकामें मारीचगमन नामक तीसरा अङ्क समाप्त.

चतुर्थोऽङ्कः ।

आन्दोलयन्विशिखमेककरेण सार्धं
कोदण्डकाण्डमपरेण करेण धुन्वन् ।
सन्नह्य पुष्पलतया पटलं जटानां
रामो मृगं मृगयते वनवीथिकासु ॥ १ ॥

हस्ताभ्यां समुपैति लेढि च तृणं न स्पृश्यतां गाहते
गुल्मान्प्राप्य निवर्तते किसलयानाघ्राय चाघ्राय च ।
भूयस्त्रस्यति पश्यति प्रतिदिशं कण्डूयते स्वां तनुं
दूरं धावति तिष्ठति प्रचलति प्रान्तेषु मायामृगः ॥ २ ॥

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्पन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥ ३ ॥

एक हाथसे बाणको घुमाते और दूसरे हाथसे धनुषपर टंकार देते तथा अधिक होनेके कारण जटाओंका जूडा बांधकर श्रीरामचन्द्रजी वनकी वीथियोंमें हरिणको खोज रहे हैं ॥ १ ॥

उस समय वह मायाका मृग कभी हाथसे पकडने योग्य स्थानपर (बहुत धोरे) आपहुंचता है, कभी घास सूंघने लगता है, परन्तु हाथ नहीं आता, कभी लताकुंजोंमें जा कोमल पत्तोंको सूंघ २ कर लौट आता है, फिर भयभीत होता है, और चारों दिशाओंकी ओर देखने लगता है, कभी अपने शरीरको खुजाता है, कभी भागता है और कभी कभी दूर खडा हो जाता है, एवं कभी इधर उधरको कतरा जाता है ॥ २ ॥

(रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको दिखाते हैं देखो यह हिरन सुन्दरताके साथ ग्रीवाको फेरकर बार २ कैसा उछलता और पीछेको देखता है, पीछे चलनेवाले मेरी ओर टकटकी लगाय बाण बिधनेके भयसे पिछले शरीरको मानो अगले शरीरमेंको सकोडे लेता है, थकावटके कारण फैले हुए मुखमेंसे गिरनेवाले आधे काटे हुए कुशोंसे मार्गको व्याप्त कर रहा है । घबडाकर कभी आकाशमें कुलाँचें भर रहा है, और कभी पृथ्वीपर चौकडियें भरने लगता है ॥ ३ ॥

बाणेन दिव्येन रघुप्रवीरस्ततो मृगं वक्षसि बद्धलक्ष्यः ।
विव्याध यावत्तरसा तपस्वी दशाननस्तावदिहाजगाम ॥ ४ ॥
मारीचमृगयाव्यग्रे रामे प्राप्ते च रावणे ।
भयादिव कुरङ्गीणामस्याः पश्यामि लोचने ॥ ५ ॥
स व्याहरद्धर्मिणि देहि भिक्षामलंघयल्लक्ष्मणलक्ष्मलेखाम् ।
जग्राह तां पाणितले क्षिपन्तीमाकारयन्तीं रघुराजपुत्रौ ॥ ६ ॥

जटायुः ।

रे रे भोः परदारचोर किमरेऽधीरं त्वया गम्यते
तिष्ठाधिष्ठितचन्दनाचलतटः प्राप्तो जटायुः स्वयम् ।
मुञ्चैनां पतिदेवतां न खलु चेन्मच्चण्डतुण्डांकुश-
क्रूरावस्करणव्रणासृगुरसः पास्यन्ति गृध्रास्तव ॥ ७ ॥
जन्म ब्रह्मकुले हरार्चनविधौ कृत्वा शिरः कृन्तनं
शक्तिर्वज्रिणि घोरदण्डदलनव्यापारशक्तं मनः ।

तदनन्तर रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीने ज्योंही निशाना बांधकर उस मृगकी छातीमें दिव्य बाण मारा उसी समय उधर रावण तपस्वीबन कुटीमें आपहुँचा ॥ ४ ॥

जब श्रीरामचन्द्रजी मारीचके शिकारमें लग रहेथे और रावण पंचवटीके समीप आपहुँचा तो (यह सीताजीको देखकर मनमें कहने लगा कि) इसके सुन्दर नेत्र तो भयके मारे कातर हुई मृगीके नेत्रोंकी समान प्रतीत होते हैं ॥ ५ ॥

वह रावण कहनेलगा कि हे धर्मिणि! (अर्थात अतिथि सेवा आदि धर्मको जाननेवाली) नारि ! मुझे भिक्षादे । यह सुन ज्योंही सीता रेखासे बाहर होकर रावणके हाथमें भिक्षा देने लगी त्योंही रावण उठाकर ले गया. उस समय सीता हा राम ! हा लक्ष्मण ! इस प्रकार बार बार पुकारती ही रहगई ॥ ६ ॥

जटायु–अरे नीच ! अरे परस्त्रीकी चोरी करनेवाले ! अरे ! क्यों घबडाया हुआ दौडा चला जारहा है ? ठहर; मैं मलयाचलपर रहनेवाला जटायु आपहुंचा हूं, इस पतिव्रताको छोडदे. नहीं तो निस्संदेह मेरी चोंचरूप प्रचण्ड भालेके घोर प्रहारसे होनेवाले घावोंमेंसे निकलते हुए तेरे हृदयके रुधिरको गिद्ध पान करेंगे॥७॥

अरे ! ब्रह्मकुलमें तेरा जन्म हुआ, शिवजीकी पूजा करनेकी विधिमें तूने अपने शिर काट काट चढाये, इन्द्रपर अपनी शक्ति दिखाई, वशमें न होनेवाले शत्रुओंको

हेलोल्लासितकेलिकन्दुकनिभः कैलास उत्पाटित-
स्तत्किं रावण लज्जसे न हरसे चौर्येण पत्नीं रघोः ॥ ८ ॥

रावणः-

मैनाकः किमयं रुणद्धि पुरतो मन्मार्गमव्याहतं
शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रादपि ।
तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावणं
हा ज्ञातं स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वाञ्छति ॥ ९ ॥

जटायुः-

मा भैषीः पुत्रि सीते व्रजति मम पुरो नैष दूरं दुरात्मा
रे रे रक्षः क्व दारान्रघुकुलतिलकस्यापहृत्य प्रयासि ।
चंच्वाक्षेपप्रहारत्रुटितधमनिभिर्दिक्षु विक्षिप्यमाणै-
राशापालोपहारं दशभिरपि भृशं त्वच्छिरोभिः करोमि॥१०॥
अक्षं विक्षिपति ध्वजं दलयते मृद्नाति नद्धं युगं
चक्रं चूर्णयति क्षिणोति तुरगान् रक्षःपतेः पक्षिराट् ।

वधमें करनेमें अपना मन लगाया तूने अनायासहीमें खेलनेकी गेंदकी समान बड़े भारी कैलासपर्वतको उखाड लिया, अरे ! ऐसा बल होनेपरभी तू चोरी करके रघुनाथजीकी पत्नीको हरकर लिये जा रहा है, ऐसा करनेमें तुझे लज्जा क्यों नहीं आई ॥ ८ ॥

रावण क्या यह मैनाक बेखटके मेरे सामने आकर मार्गको रोक रहा है ? परन्तु उसकी इतनी शक्ति कहाँ, क्योंकि वह तो इन्द्रके वज्रप्रहारसे डरा हुआ है तो क्या यह गरुड है ? परन्तु गरुडभी अपने स्वामी विष्णुसहित मुझ रावणको जानता है, ओः ! जान लिया यह वह जटायु है, जो बुढापेके कारण क्लेशित हो मरना चाहता है ॥ ९ ॥

जटायु-बेटी सीते ! डरै मत, यह दुष्टात्मा मेरे सामनेसे दूर निकलकर नहीं जासकता, अरे नीच राक्षस ! रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्रीको हरकर तू कहां जाता है, अरे ! अभी चोंचोंके प्रहारोंसे रगोंको तोडकर तेरे चारों ओर लुढकते हुए दशों शिरोंसे दिक्पालोंको बलि दिये देता हूं ॥ १० ॥

पक्षिराज जटायु राक्षस पतिरावणके रथके धुरेको तोडते हैं, ध्वजाको मरोडते

रुन्धन्गर्जति तर्जयत्यभिभवत्यालम्बते ताडय-
त्याकर्षत्यवलुम्पति प्रचलति न्यञ्चत्युदंचत्यपि ॥ ११ ॥

क्रुद्धस्ततो दृढचपेटशिलातलेन
रक्षः पिपेष गहनेऽद्भुतपक्षिराजम् ।
ईषत्स्थितासुरपतद्भुवि राम राम
रामेति मन्त्रमनिशं निगदन्मुमुक्षुः ॥ १२ ॥

न मैत्री निर्व्यूढा दशरथनृपे राज्यविषया
न वैदेही त्राता हठहरणतो राक्षसपतेः ।
न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोऽभूत्सुकृतिनो
जटायोर्जन्मेदं वितथमभवद्भाग्यरहितम् ॥ १३ ॥

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम् ।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती-
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ॥ १४ ॥

हैं बंधे हुए धुरेको कुचलते हैं, पहियोंको चूरा २ करते हैं, घोडोंको घायल करते हैं, और रोककर गर्जते हैं, भय दिखाते हैं, तिरस्कार करते हैं, मार्गमेंसे निकलने नहीं देते, रावणके शरीरपर चोटें करते हैं, केशोंको खसोटते, वस्त्रोंको फाडते और अपने उडनेकी फुरती दिखाते हुए रावणके प्रहारसे अपने शिरको नवा लेता है, तथा उसके प्रहारको बचानेके लिये ऊपरको उड जाते हैं ॥ ११ ॥

तब अतिक्रोधमें भरे हुए राक्षस रावणने शिलाके प्रहारके समान हाथके एकही दृढ तमँचेसे उस अद्भुत पक्षिराज जटायुको वनमें मसलडाला, उस समय जटायु हृदयमें मोक्षपद पानेकी अभिलाषा रक्खे हुए कुछेक प्राण शेष रहनेपर हे राम ! हे राम ! हे राम ! इस मंत्रको बार २ जपता हुआ भूमिके ऊपर गिर पडा ॥ १२ ॥

राज्यके पालनमें मैं सहायता करूंगा, हाय ! मैंने इस कथनके अनुसार राजा दशरथकी मित्रताको न निभाया, हठके साथ हर ले जाते हुए राक्षसपति रावणसे मैं सीताकी रक्षा न करसका, और न पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीका मुखचन्द्रही मुझे देखनेको मिला हाय ! मुझ अभागे जटायुका यह जन्म निरर्थकही गया ॥ १३ ॥

हा राम ! हा राम ! हा संसारके एक वीर ! हा नाथ ! हा रघुपते ! मेरी सुधि

आकृष्यमाणाभरणानि मुक्त्वा सेरघ्वजी मारुतिमद्रिमौलौ ।
उवाच रामाय सलक्ष्मणाय वराय देयानि सदेवराय ॥ १५ ॥

रामः–(शुष्के स्थाणौ दक्षिणे रटन्तं करटमवलोक्य पुनरागच्छन्निजप्राणप्रयाणमेव मन्वानः क्षणं विश्रम्य)

मायाकुरंगं विनिहत्य रामो भ्रात्रा सहागत्य च पर्णशालाम् ।
कोणत्रयेषु प्रसमीक्ष्य सीतां दृष्टश्चतुर्थो न च शोकभीत्या ॥ १६ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके सीताहरणं नाम चतुर्थोऽङ्कः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽङ्कः ।

रामः–(प्राणोत्क्रमणसमयादपि घोरतरं वियोगसमयमधिगम्य पर्णशालान्तरालमालोक्य कथमपि विदीर्णहृदयमार्गादुज्जिगमिषून्प्राणान्धारयंस्तदुत्तरीयमुपलभ्य जानकीं स्मरन्नरोदीत्)

द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते ।

क्यों नहीं लेते ! इस प्रकार बार २ विलाप करती हुई जानकीको लेकर राक्षसपति रावण आकाशमार्गसे चला गया ॥ १४ ॥

हरकर ले गई हुई सीताजीने शीघ्रतासे गहने उतार पर्वतके शिखरपर छोडकर हनुमान्‌जीसे कहा कि–यह मेरे गहने देवर लक्ष्मणके साथ आनेवाले माननीय श्रीरामचन्द्रजीको देदेना ॥ १५ ॥

(इधर श्रीरामचन्द्रजी लौटते समय दाहिनी ओर सूखे ठूंटपर बोलते हुए काकको देखकर अपने प्राणको निकला हुआसा मान क्षणभर विश्राम करके) मायारूपी मृगको मारकर भाई सहित आए हुए श्रीरामचन्द्रजीने पर्णशालाके तीन कोनोंमें सीताको ढूँढा शोकके भयसे चौथे कोनेको न खोजसके ॥ १६ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटकभाषाटीकामें सीताहरणनामक चतुर्थ अंक समाप्त ।

रामचन्द्र–(प्राण निकलनेके समयसेभी अधिक दुःखदायक वियोगके समयको पाकर पर्णशालाके भीतर देख बडी कठिनतासे विदीर्ण हुए हृदयरूपी मार्गसे निकलकर जानेकी इच्छा करनेवाले प्राणोंको रोकते हुए जानकीका दुपट्टा पाय स्मरण कर रोने लगे–)

जो द्यूतके समय दांवपर लगाया जाता था, प्रेमकी क्रीडाओंमें कण्ठपाश बनाया

शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम् ॥ १ ॥
बहिरपि न पदानां पंक्तिरन्तर्न काचि-
त्किमिदमियमसीता पर्णशाला किमन्या ।
अहमपि किल नायं सर्वथा राघवश्चे-
त्क्षणमपि नहि सोढा हन्त सीतावियोगम् ॥ २ ॥
मध्योऽयं हरिभिः स्मितं हिमरुचा नेत्रे कुरङ्गीगणैः
कान्तिश्चम्पककुड्मलैः कलरवो हा हा हृतः कोकिलैः ।
मातंगैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विभज्याधुना
कान्तारे सकलैर्विनाश्य पशुवन्नीतासि भो मैथिलि ॥ ३ ॥
युक्तमेव हि कैकेय्या यदहं प्रेषितो वनम् ।
ईदृशी यस्य मे बुद्धिर्मृगः क्वापि हिरण्मयः ॥ ४ ॥
आलिंगितात्र सरसीरुहकोरकाक्षी
पीताधरेति मधुरे विधुमण्डलास्या ।

जाता था, और आधी रात्रिके समय शय्याका काम देता था, प्रारब्धवशात् जानकीका यह वही दुपट्टा इस समय मुझे मिला है ॥ १ ॥

पर्णशालाके बाहर चरणोंके चिह्न नहीं हैं, और न पर्णशालाके भीतरहीको चिह्न हैं, क्या यह सीताविहीन कोई दूसरीही पर्णशाला है ? या मैंही कोई और होगया हूं, यदि राम होता तो क्षणभरभी सीताका वियोग न सहसक्ता ॥ २ ॥

हाय सीते ! इस वनमें सब वनके प्राणी तुझे पशुकी समान मारकर लेगये हैं—मध्यभाग (पेट) सिंहोंने, मुसकुरान चन्द्रमाने, नेत्र हरिणोंने, कान्ति चम्पेकी कलियोंने, मधुर भाषण कोकिलोंने, और हाय हाय तेरे गमनको हाथियों और इन हंसोंने न जाने कैसे बांटकर लिया होगा ॥ ३ ॥

कैकेयीने ठीकही किया जो मुझे वनको भेज दिया, मुझ (मूर्खकी) ऐसी (उलटी) बुद्धि है, मृग कहीं सुवर्णका होता है ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! कुडल गई ऐसे ये हे कमलकी कलीसमान नेत्रवाली ! यहां मैंने तुझे आलिङ्गन किया था, हे मधुरे ! चन्द्रमण्डलकी समान तेरे मुखका अधरामृत पिया

रंगावतारमकरंदविमर्दितानि
पुष्पाण्यमूनि दयिते क्व गतेत्यरोदीत् ॥ ५ ॥

गाहंगाहं गह्वरकान्तारवनान्ता-
द्दर्शंदर्शं दर्पकभल्लीरिव वल्लीः ।
स्मारंस्मारं दूरगतां तामथ कान्तां
रामः कान्तामद्रिचरो दीनमरोदीत् ॥ ६ ॥

स भूरजोरञ्जितसर्वकायो
बभौ विभुर्मन्युविदीर्णचेताः ।
योषिद्वियोगानलदह्यमानं
स्वकान्तमालिङ्गयतीव भूमिः ॥ ७ ॥

सीतेति हा जनकवंशजवैजयन्ति
हा मद्विलोचनचकोरनवेन्दुलेखे ।
इत्थं स्फुटं बहु विलप्य विलप्य राम-
स्तामेव पर्णवसतिं परितश्चचार ॥ ८ ॥

या, केलिसमयमें जिनकी मकरन्द कुचल गई ऐसे ये पुष्प अबभी पडे हुए हैं, हे प्रिये ! तू कहां गई, ऐसा कहकर रुदन करनेलगे ॥ ५ ॥

गहन बनोंके दुर्गम मार्गोंमें घूम २ कर कामदेवके भाले समान लताओंको देख देखकर अपनेसे दूर हुई मनोहारिणी पिया सीताको स्मरण कर २ के पर्वतोंमें विचरनेवाले श्रीरामचन्द्रजी दीनताके साथ रुदन करने लगे ॥ ६ ॥

पृथ्वीकी धूलिसे जिनका सब शरीर अटरहा है, शोकसे विदीर्ण चित्तवाले सर्वव्यापी श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी शोभा हुई मानो स्त्रीके वियोगकी अग्निसे भस्म होते हुए अपने पतिको पृथ्वी आलिङ्गन कर रही है ॥ ७ ॥

हा सीता ! हा जनकवंशियोंकी पताकारूप ! हा मेरे नेत्ररूप चकोरोंको नवीन चन्द्रकी समान इस प्रकार प्रकटरूपसे बार २ विलाप करके श्रीरामचन्द्रजी उस पर्णशालाके चारों ओर विचरने लगे ॥ ८ ॥

हा जानकि प्रचलितोत्पलपद्मनेत्रे
हा मे मनःकमलकाननराजहंसि ।
एष प्रिये तव वियोगजवह्निदग्धो
दीनं प्रयामि भवतीं क्व विलोकयामि ॥ ९ ॥

रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः ।
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकांची
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान्केन दृष्टा ॥ १० ॥

हे गोदावरि पुण्यवारिपुलिने सीता न दृष्टा त्वया
सा हर्तुं कमलानि चागतवती याता विनोदाय वा ।
इत्येवं प्रतिपादपं प्रतिनगं प्रत्यापगं प्रत्यगं
प्रत्येणं प्रतिबर्हिणं तत इतस्तां मैथिलीं याचते ॥ ११ ॥

(पुनर्लक्ष्मणमासाद्य वैक्लव्यं नाटयति)

के यूयं वद नाथनाथ किमिदं दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः
कोऽहं वत्स स आर्य एव भगवानार्यः स को राघवः ।

हा जानकि ! हा खिलते हुए नीलकमलके समान नेत्रवाली ! हे मेरे मनोरूप कमलवनकी राजहंसी ! हे प्रिये ! यह देख मैं तेरी वियोगाग्निसे दग्ध हुआ दीनके समान फिर रहा हूं हाय तुझे कहाँ देखूँ ॥ ९ ॥

अरे पर्वतके वृक्षो ! हे वायुसे हिलती हुई पर्वतकी वनकी लताओ ! मैं व्याकुलचित्त हुआ शोकाग्निसे भस्मीभूत दशरथपुत्र रामचन्द्र हूं, क्या तुममेंसे किसीने कंदूरीके समान लाल ओठवाली, सुनयना, अतिविशाल जंघाओंवाली और गजमुक्ताओंकी तागडीको पहिने सीता देखी है ? न जाने उस मेरी हृदयेश्वरीको कौन लेगया अरे तुम कौन हो ? बताओ तो सही किसीने देखी है ॥ १० ॥

हे गोदावरी ! हे पवित्र जलवाली, तूने कमलोंको लेनेके लिये, आती हुई सीता तो नहीं देखी ? इस प्रकार प्रत्येक वृक्षसे, प्रत्येक पर्वतसे, प्रत्येक नदीसे, प्रत्येक मृगसे, और प्रत्येक मोरसे, जिधर तिधर श्रीरामचन्द्रजी सीताको मांगते (पूछते) थे ॥ ११ ॥

(फिर लक्ष्मणको पाय विकलताका नाट्य करते हैं) राम-बताओ तुम कौन

किं कुर्मो विजने वने तत इतो देवी समुद्वीक्ष्यते
का देवी जनकाधिराजतनया हाहा प्रिये जानकि ॥ १२ ॥

(सौमित्रिणा सह रामः, अत्रान्तरे वनान्तं पर्यटञ्जनकतनया तापिनः पापिनो रजनिचरपतेर्भुजङ्गमण्डलीखण्डितो रगवधूवैधव्यधातारं विपक्षरक्षसा निहतं घोरसमरमूर्च्छितं पक्षिराजं जटायुषं भग्नं च रावणरथमालोक्य—)

ज्ञात्वा दशरथस्यैनं मित्रं शत्रुनिषूदनम् ।
हा तात किमिदं नाम रामः पक्षीन्द्रमब्रवीत् ॥ १३ ॥

जटायुः—

अर्धरात्रे दिनस्यार्धे अर्धचंद्रेऽर्धभास्करे ।
रावणेन हृता सीता कृष्णपक्षे सिताष्टमी ॥ १४ ॥

हो ? लक्ष्मण—हे नाथ ! हे महाराज ! आपको यह क्या हुआ ? मैं आपका दास लक्ष्मण हूं। राम—हे तात ! मैं कौन हूं ? लक्ष्मण—महाराज आप वही रामचन्द्र हैं । राम—वह कौन राम ? लक्ष्मण—वही रघुकुलभूषण । राम—इधर उधर निर्जन वनमें घूमते हम क्या कर रहे हैं ? लक्ष्मण—देवीको खोजते फिरते हैं । राम—कौनसी देवी ? लक्ष्मण—महाराज जनकजीकी पुत्री । राम—हाय हाय प्रिये जानकी ! तू कहाँ है ? ॥ १२ ॥

(इस बीचमें लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी वनमें घूमते हुए जानकीको ताप देनेवाले पापी राक्षसपति रावणकी भुजारूप सर्पमण्डलीसे खंडित (घायल) हुए, सर्पोंकी वधुओंको विधवा बनानेवाले तथा शत्रु रावणके साथ घोर संग्राम करके मृतकसमान मूर्च्छित पडे हुए पक्षिराज जटायु तथा टूटे हुए रावणके रथको देखकर) इस पक्षिराजको पिता दशरथका मित्र और अपने शत्रुका नाश करनेवाला जानकर श्रीरामचन्द्रजी कह उठे कि, हा तात ! यह तुम्हारी क्या दशा हुई है॥ १३॥

जटायु—(पितरोंकी) अर्धरात्रि देवताओंके दिनके मध्य समयमें शुक्ल पक्षमें अष्टकलायुक्त चन्द्रमा और मध्याह्नकालिक अर्ध सूर्य होनेपर शुक्रवार अष्टमीके दिन अर्थात् देवताओंके आधे दिन रूप चैत्रमासकी पितरोंकी अर्ध रात्रि रूप अष्टमीके दिन शुक्रवार सहित मध्याह्नकालमें रावणने सीताको हरा था ॥ १४ ॥

रामः-

भग्नोऽयं कथमस्ति रावणरथस्तातेन वज्रांकुर-
रावस्करणेन भंगुरलसत्कोटित्रुटज्ज्यं धनुः।
सीरध्वजराजपुत्रि स तथा दृष्टस्त्वया धन्यया
पक्षीन्द्रो दशकण्ठकुञ्जरशिरःसंचारिपञ्चाननः ॥ १५ ॥
तात त्वं निजतेजसैव गमितः स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते
ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथां तातान्तिके मा कृथाः।
रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्व्रीडानमत्कन्धरः
सार्धं बन्धुजनेन सेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः ॥ १६ ॥

(वनेचरान्मृगान्विलोक्य आः खलुः दुरात्मनाममीषां रूपेण मारीचिना प्रपञ्चमवलम्ब्य प्राणवल्लभाश्लेषतो विश्लेषितोऽहमिति अहं पुनः मृगीचक्रवधेन कुरङ्गाणां प्रियाविरहमुत्पादयामीति विचार्य-)

अमोघाः कृष्टनालीकाः काननेषु मृगीवधे।
रामः किं दूरघातीति सीतानयनशङ्कया ॥ १७ ॥

राम-हे तात! वज्रकी धारसमान आपकी भयानक चोंचकोभी फाड डालनेसे टेढी कोटिवाले और अब जिसका रोदा टूट गया है ऐसे रावणके धनुषको और रथको आपने कैसे तोडा था, हे जनकनन्दिनी सीते! रावणरूप हाथीके शिरोंपर फिरनेवाले सिंहके समान इस पक्षिराज जटायुका तूने दर्शन किया इस कारण तू धन्य है॥ १५॥

हे तात जटायु! तुम अपने तेजसेही स्वर्गको प्राप्त हुए हो, जाओ तुम्हारा कल्याण हो, परन्तु तुमसे एक इतनी प्रार्थना है, कि इस सीताहरणकी बातको पिता दशरथजीके समीप मत कहना, यदि मैं रघुवंशी राम हूँ तो थोडेही दिनोंमें कुम्भकर्णादि अपने बन्धुजन तथा इन्द्रविजयी मेघनादसहित यह रावणही लज्जासे ग्रीवाको नवाये हुए तहां आकर अपने आपही सब समाचार सुना देगा॥ १६ ॥

रामः-वनचारी मृगोंको देखकर (ओः निस्संदेह इन दुष्टात्माओंकेही रूपसे मारीचने माया फैलाकर मुझे प्राणप्रियाके संगसे छुडाया है, इस कारण अब मैंभी हरिणियोंके समूहका वध करके मृगोंको स्त्रीवियोगका दुःख उत्पन्न करूँ; ऐसा विचार कर)-

वनोंमें मृगियोंके वधके लिये कानोंतक खैंचे हुए निशानोंको पार करनेवाले लोहेके

(ततः कथमपि भगवति भास्करेऽस्ताचलावलम्बिनि प्रलय-कालोदितप्रचण्डमार्तण्डमण्डलमिवोदितं चन्द्रमण्डलं तरुण-कोपारुणदारुणं तरणिनन्दनमिवावलोक्य)

सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्जृम्भते
चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति ।
वत्सैतद्भवता कथं नु विदितं धत्ते कुरंगं यतः
क्वासि प्रेयसि हा कुरंगनयने चन्द्रानने जानकि ॥ १८ ॥

(चन्द्रमधिक्षिपति)

मन्दरेण मथितोऽसि न पापिञ्ज्वालितोऽसि तमसा न दुरात्मन् ।
त्वां शरेण शतधा परिनिन्ये जानकीमुखसमो यदि न स्याः॥१९॥

(अपि च लक्ष्मणं प्रति)

सौमित्रे दाववह्निस्तरुशिखरगतो वार्यतां निर्झरौघैः
का वार्ता दाववह्नेरयमुदयगिरेरुज्जिहीते हिमांशुः ।
धत्ते धूमं हिमांशुः कथय कथमयं नैव धूमो धरण्या-
श्छायेयं संगताऽभूदयि धरणिसुते कुत्र कान्तेसि सीते ॥ २० ॥

बाण और दूरसेही प्रहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी उनके नेत्रोंमें जानकीके नेत्रोंकी समानता देख वध करनेमें अपराधकी शंकासे निवृत्त हो गये ॥ १७ ॥

(फिर जैसे तैसे सूर्य भगवान्के अस्त होनेपर जब प्रलयकालके प्रचंड सूर्यकी समान तरुण क्रोधकी अरुणतासे कठोर नवोदित चन्द्रमाको सूर्यसा रक्तवर्ण देख) हे लक्ष्मण ! देखो सूर्यका उदय होता है, चलो वृक्षकी छायामें चलकर बैठे । लक्ष्मण–नाथ ! रातमें सूर्य कहां ? महाराज ! यह तो चन्द्रमाका उदय होरहा है, राम–तुमने यह कैसे जाना ? लक्ष्मण–क्योंकि यह मृगका चिह्न धारण कर रहा है । राम–हा कुरङ्गनयनी चन्द्रमुखी प्रिये जानकी ! तू कहाँ है ? ॥ १८ ॥

(चन्द्रमाको धिक्कार देते हैं) अरे पापी ! तुझे मन्दराचलने क्यों न मथा; अरे दुरात्मन् ! तुझे राहुने भस्म क्यों नहीं किया, यदि तू जानकीके मुखकी समान नहीं होता तो मैं अभी बाण लेकर तेरे सैकडों टुकडे कर डालता ॥ १९ ॥

(फिर लक्ष्मणजीसे) लक्ष्मण ! देखो यह वृक्षोंकी शाखाओंपर वनकी दा लगरही है, झरनोंके जलसे इसको बुझाओ । लक्ष्मण–महाराज ! इस समय दौंकी

(सकरुणं आत्मनि प्राणवल्लभायाः परमप्रेमाणमधिगम्य)

शंके शशांके जगुरंकमेके पंकं कुरंगं प्रतिबिम्बितांगम् ।
धूमं च भूमण्डलमुद्धताग्नेर्वियोगजातस्य मम प्रियायाः ॥ २१ ॥

रे रे निर्दय दुर्निवार मदन प्रोत्फुल्लपंकेरुहा-
न्बाणान्त्संवृणु संवृणु त्यज धनुः किं पौरुषं मां प्रति ।
कान्तासंगवियोगजातहुतभुग्ज्वालाप्रदग्धं वपुः
शूराणां मृतमारणे नहि वरो धर्मः प्रयुक्तो बुधैः ॥ २२ ॥

(अथवा)

आपुंखाग्रममी शरा मनसि मे मग्नाः समं पञ्च ते
निर्दग्धं मदनाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं पुनः ।
कष्टं काम निरायुधोऽसि भवता जेतुं न शक्यो जनो
दुःखी स्यामहमेक एव सकलो लोकः सुखं जीवतु ॥ २३ ॥

अग्निकी क्या बात है, यह तो उदयाचलसे चन्द्रमा निकल रहा है । राम—वो भला यह धुएँको क्यों धारण कर रहा है ? लक्ष्मण—महाराज ! यह धुवाँ नहीं है, किन्तु चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया पडरही है । राम—हे भूमिसुते ! सीते ! प्रिये ! तू कहाँ है ? ॥ २० ॥

(बडी करुणाके साथ अपने ऊपर प्राणप्रियाके परम प्रेमको स्मरण करके) कोई कभी अपने चित्तमें कहते हैं कि चन्द्रमापर कलंक लगा है । एक कहते हैं, कि समुद्रकी कींच लग रही है । दूसरे कहते हैं कि, चन्द्रमामें इसके वाहन मृगका प्रतिबिम्ब पड रहा है, और कोई कहते हैं, कि इसपर पृथ्वीकी छाया पड रही है, परन्तु मुझको तो ऐसी शंका होती है कि यह मेरे वियोगसे उत्पन्न हुए प्रिया सीताके शोकाग्निका धुआं है ॥ २१ ॥

अरे नीच ! कठिनसे हटाने योग्य कामदेव ! खिले हुए कमलरूप अपने बाणोंको लौटा २, अरे धनुषको छोड दे, मेरे ऊपर क्या पुरुषार्थ करता है, क्योंकि मेरा शरीर तो अपने आपही प्रियाके संगके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकाग्निकी ज्वालाओंसे आपही भस्म हो रहा है, चतुरोंका कहना है कि मरे हुओंको मारनेमें शूर पुरुषोंका श्रेष्ठ धर्म नहीं है ॥ २२ ॥

(अथवा) ये तेरे पांचों बाण परों सहित मेरे मनमें गड गये और हे काम !

(तत्रापि क्षणं विकसिताशोकतरुतले विश्रा-
म्याह स्म दाशरथिः-)

रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः प्रियाया गुणै-
स्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्ताः सखे मामपि।
कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयो-
स्तुल्यं सर्वमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः॥ २४॥

(पुनरपि प्रलपति)

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः॥ २५॥

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते॥ २६॥

उन तेरे पांचों बाणों सहित मेरा यह शरीर जानकीकी वियोगाग्निसे भस्म हो गया, अरे! मनोभव! बडे दुःखकी बात है कि अब तू शस्त्रहीन हो गया, इस कारण संसारमें किसीको जीत नहीं सकेगा, अच्छा हुआ अकेला मैं ही दुःखी रहूँ, और सब संसार सुखसे जीवे॥ २३॥

(उस दिशामेंभी खिले हुए अशोक वृक्षके नीचे क्षणभर विश्राम करके दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे) हे अशोक! तू नये २ पत्तोंसे रक्त (लाल) और मैं प्रशंसा योग्य प्रिया जानकीके गुणों करके रक्त (अनुरक्त) हूँ, हे मित्र! तेरे ऊपर शिलीमुख (भौंरे) आते हैं तो मेरे ऊपरभी कामदेवके धनुषसे छूटे हुए शिलीमुख (बाण) आते हैं, तू स्त्रीके चरणतलकी ठोकरसे प्रसन्न होता है, तैसेही मैं भी, मेरी तेरी सब बातें समान हैं, केवल विधाताने (तुझको अशोक और) मुझको सशोक (शोकयुक्त) बनाया है॥ २४॥

(फिरभी प्रलाप करते हैं) अन्तर पड जानेके भयसे मैंने कंठमें हारभी नहीं पहरा था, परन्तु इस समय मेरे और तेरे अन्तर (मध्यमें) पहाड नदियें और वृक्ष हो गये॥ २५॥

चन्द्रमा सूर्यकी समान सन्तापदायक होगया, मन्द २ चलनेवाला वायुभी

मांसं कार्श्याद्‌भिगतमपां बिन्दवो बाष्पपाता-
त्तेजः कान्तापहरणवशाद्वायवः श्वासदैर्घ्यात् ।
इत्थं नष्टं विरहवपुषस्तन्मयत्वाच्च शून्यं
जीवत्येवं कुलिशकठिनो रामचन्द्रः किमेतत् ॥ २७ ॥

सलक्ष्मणो रामः–

एवं दैवयोगाद्गौरगवयगजभुजंगशरभशार्दूलकोलबहुलकोलाहलाहूतभूतवेतालसमुत्तालकालकरालचक्रवालकंठनालप्रोच्छलतुमुलघोरचीत्कारमिलितबहलान्धकारकलितगह्वरांतरालविलसदविरलसरलपरिमलबहलचञ्चलगलद्विमलमकरन्दबिंदुकीलालजालपिच्छलालवालखुलितप्रमत्तालिमालमंदानिलान्दोलवाचालदरदलितललितमाकन्दवृन्दबकुलमुकुलिधूलिजालखेलत्कोकिलकुलविलासिनीकोमलालापनिखिलगिरिशिखरशिखिलास्यलीलाकलापसानुकूललोलद्गोलांगूलचञ्चच्चकोरचक्रमञ्जुगुञ्जद्रक्षपक्षिणीपक्षवृद्धिम् ॥ २८ ॥

वज्रसा प्रतीत होता है, पुष्पमाला सुइयेंसी छिदती हैं, चन्दनका लेप अग्निकी चिनगारियोंसा लगता है । रात्रि सैकडों कल्पकी समान होगई, दैवकी प्रतिकूलतासे प्राणभी भारसे लगते हैं, हाय ! अधिक क्या कहूं जानकीके वियोगका समय तो प्रलयकालकी समान होगया है ॥ २६ ॥

दुर्बलताके कारण मांसरूप भूमितत्त्व नष्ट होगया, निरन्तर आंसुओंके गिरनेसे जलकी बिन्दुरूप जलतत्त्व नष्ट होगया, स्त्रीके हरेजानेसे तेजःस्वरूप तत्त्वभी जाता रहा, लम्बे २ श्वासोंके कारण वायुतत्त्व नष्ट होगया, मनमें प्रियाके बसनेसे आकाशतत्त्वभी न रहा, इस प्रकार विरहसे शरीर नष्ट होगया, परन्तु वज्रकी समान कठोर मैं रामचन्द्र अबभी जी रहा हूं, यह कैसे अचरजकी बात है ॥ २७ ॥

(लक्ष्मणसहित राम) इस प्रकार दैवयोगसे गौरवर्ण गवय, हाथी, सर्प, शरभ, (आठपगवाला मृग) शेर, सूकरोंके अत्यन्त कोलाहलसे आए हुए, भूत वेतालोंके बडे बडे कराल मंडलोंके कंठसे निकले हुए, बडे भारी चिल्लाहटसे मिले, घने अन्धकारसे भरी हुई गहनगुफाओंमें विलास करनेवाला जो निरन्तर देवदारुका गन्ध तिससे युक्त, जो बहुतसे गिरते हुए स्वच्छ मकरन्दके बिन्दु तद्रूप जलके प्रवाहसे

गगनचुम्बनबद्धलक्ष्यविपुलफलाभारावलम्बनालम्बितानन्तजन्तुसंतोषपोषनिर्दोषभूषणाध्युषिताविःशेषसविशेषामृतवर्षस्पर्धिवर्धिष्णुरसरसालप्रियालहिन्तालतमालकृतमालविशालशाल्मलमालूरशल्लकीशिरीषासनशमीशाकशिंशपाशोकचम्पकसुरदारकोविदारकर्णिकारसिन्दुवारबहुसारानिम्बजम्बूदुम्बरकदम्बकरञ्जसौभाञ्जनबकुलनिचुलकरुखर्जूरबीजपूरजंबीरभाण्डारवानीरकाश्मीरनारङ्गकर्मरङ्गकदलीचन्दनालिंगितालवलीधात्रीवटकुटजपाटकाङ्कोलकंकोलचोलभल्लातकबिभीतकहरीतकयाम्रातककेतककंकतवैकंकतमधूकबन्धूकजयंतीजपाश्वत्थकपित्थतिन्तिणीनागकेसरादिदुस्तरामरण्यानीं पर्यटन्महावराहस्कन्धारूढमुत्कटं रटन्तं करटं वामतो विलोक्य ॥ २९ ॥

भरे हुए जो वृक्षोंके थामले, तिनमें गुंजारनेवाले जो मतवाले भौंरे तिनकी पंक्तियोंसे मंद २ पवनके झकोले आनेके कारण शब्दायमान स्वच्छ खिले हुए सुन्दर मौलश्रीके वृक्षोंके समूहोंमें धूलिसे अटी क्रीडा करती हुई कोकिलाओंकी कोमल कूकसे भरे हुए पर्वतोंके शिखरोंमें मोरोंके नाचनेकी लीलाओंके अनुकूल इधर उधरको चलायमान चमरगायोंकी पूँछें और चंचल चकोरोंके समूहोंसे युक्त होकर शब्द करती हुई जो वृक्षोंपरकी पक्षियोंकी खियें तिनके परोंकी वृद्धिको ॥ २८ ॥

आकाशको छूनेमें जिन्होंने ध्यान बांधा है. भारीपनसे लटकते हुए फलोंके गुच्छोंमें स्थित अनेकों प्राणियोंको सन्तोष और पुष्टि देनेसे निर्दोष भूषणवाले वृक्षोंमें स्थित जो पूर्ण अनेकों प्रकारका स्वादवाला अमृतसे स्वादिष्ट प्रतिदिन बढते हुए रससे युक्त जो आम, चिरौंजी, हिंगोटक, कमाल, कृतमाल, त्रिसाल, सेमल, बेल, शाल, सिरस, विजयसार, शमीशाक, अशोक, चम्पा, देवदारु, कचनार, कनेर, सप्तपर्ण, सेंजना, नीम, जामन, गूलर, कदम्ब, कंजा, मौलश्री, समुद्रफल, खजूर, बिजोरा, जमीरी, भाण्डार, बेत, केशर, नारंगी, अगर, केला, चन्दनसे लिपटा हुआ आँवला, बड, कुटज, पाणल, अंकोल, कंकोल, चोल, भिलावा, बहेडा, हर्र, अमलवेत, केतकी, कंघी, कंकत, महुआ, कंदूरी, जयन्ती, जया, पीपल, कैथ, इमली, नागकेशर आदि वृक्षोंसे अतिदुस्तर वनोंमें विचरते हुए श्रीरामचन्द्रजी अपने वाम भागमें बडे भारी सूकरके कन्धेपर बैठकर घोर शब्द करनेवाले काकको देखकर ॥ २९ ॥

दक्षिणतस्तु दक्षिणाचलप्रचलितमलयमालतीमरुचकलवङ्गकंकोलदमनकजातीतगरशतपत्रादिकमलमुकुलकुमुदिनीकह्लारपरिमलमिलितचुम्बितताम्रपर्णीकावेरीतुङ्गभद्रासा द्रगंभीरनीरधारातरङ्गपरिपीतमैत्रावरुणतरुणीलंकाशशांकरुद्रपादाद्रिसरलसिंहलशालकश्रीगोपालकां पाण्डयमण्डलगिरिप्रवालचोलकुन्तलकेरलपुन्नाटककर्णाटककरहाटविदग्धान्ध्रकामिनीनीरन्ध्रपीनस्तनवदनघनजघनदोर्मूलधम्मिल्लभारान्तराधिष्ठितश्रीखण्डागरुकर्पूरमृगमदकुंकुमस्तोमसंभूतयक्षकर्दमाविमर्दवर्धितविविधगन्धकुसुमबहुलपरिमलोद्गारिमारुताशनोत्थितक्षीरनीहारकाश्मीरस्फटिकशुद्धशंखकर्पूरकुन्दावदातमहाभुजंगस्फीतफूत्कारप्रफुल्लफणामणौ क्रीडन्तं शोकभञ्जनं खञ्जनं चावलोक्य वामेनाक्ष्णा सकरुणं सबाष्पं च दक्षिणेन साविस्मयं सानन्दमभवदिति ॥ ३० ॥

और दाहिनी ओर दक्षिणी पवनोंसे कंपायमान मलयाचलके मालती, मरिच, लवंग, कंकोल, कुन्द, चमेली, तगर, शतपत्र, कमलोंकी कली, और चन्द्रविकासी कमल और कह्लारोंकी सुगन्धिसे मिले हुए, तथा ताम्रपर्णी, कावेरी, तुंगभद्रा आदि नदियोंकी गहन गंभीर जलधाराओंकी तरंगोंसे मिली हुई मैत्रावरुणकी तरुणी, लंका, शशाङ्क, कैलास, पर्वत, सरल, सिंहलद्वीप, शालक, और श्रीगोपालक देशोंकी तथा पाण्डय, गिरिप्रवाल, चोल, कुन्तल, केरल, पुन्नाटक, करनाटक, करहार देशोंकी विदग्धा नायिकाओंके अन्तररहित पुष्ट स्तन, मुख, पुष्ट जंघा, बगलें और शिरकी बेनीके भारसे मध्यमें स्थित चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, और केशरके समूहसे उत्पन्न हुए लेपको रगडनेसे बढी हुई अनेकों प्रकारकी सुगंध और फूलोंकी अधिक सुगंधको उडानेवाले, पवनके भक्षण करनेवाले, उठी हुई दूध, बरफ, श्वेत पत्थर, बिलोरी पत्थर, स्वच्छ शंख कपूर, और कुन्दकी समान श्वेत वर्णवाले अजगर सर्पकी भयानक फूंकारोंसे फैले हुए फणकी मणिपर क्रीडा करते हुए शोकनाशक ममोले पक्षीको देखकर बांये नेत्रमें करुणाके आँसू आकर दाहिना नेत्र अचम्भेके साथ आनन्दयुक्त हुआ ॥ ३० ॥

काकः कपोलस्थलसंस्थितो मे कोलस्य वामे व्यसनं सदोस्थ्यम् ।
राज्यं भुजंगस्य फणाधिरूढो व्यनक्त्यहो दक्षिणखञ्जरीटः ॥३१॥

(क्षणं विचिन्त्य विश्रम्य च सबाष्पम्)

भो भो भुजङ्ग तरुपल्लवलोलजिह्व
बन्धूकपुष्पवरशोभितपुष्कराक्ष ।
पृच्छामि ते पवनभोजनकोमलांगी
काचित्त्वया शरदचन्द्रमुखी न दृष्टा ॥ ३२ ॥

भुजङ्गमः-(सुवाणीं कथयति)

गता गता चम्पकपुष्पवर्णा पीनस्तनी कुंकुमचर्चितांगी ।
आकाशगंगेव सुशीतलांगी नक्षत्रमध्ये इव चन्द्ररेखा ॥ ३३ ॥

रामः-

व्यसनं किमतोऽप्यास्ते ज्ञातश्चाभ्युदयो मम ।
शरणं मरणं राज्यं मा पुनर्लक्ष्मणेऽस्तु तत् ॥ ३४ ॥

बांई ओर सूकरके कपोलपर बैठा हुआ काक असह्य दुःखको और दाहिनी ओर सांपके फनपर बैठा हुआ ममोला पक्षी मुझे राज्य मिलनेका शकुन प्रकट कर रहा है, यह बडा आश्चर्य है ॥ ३१ ॥

(चिन्ताके साथ क्षणभर विश्राम लेकर आँखोंमें आंसू भरे हुए) ओरे वृक्षके पत्तेकी समान चञ्चल जीभवाले सर्प ! अरे गुडहलकी फूलके समान कमलनेत्रवाले ! हे पवनके आहारी ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुमने कोमलाङ्गी शरदृऋतुके चन्द्रमाकी समान मुखवाली कोई स्त्री तो नहीं देखी है ? ॥ ३२ ॥

सर्प-(सुन्दर वचन कहता है) चम्पेके फूलकी समान सुन्दरी, घने स्तनवाली, जिसके शरीरपर कुंकुमसे लिप्त हो रहा है और आकाशगंगाकी समान परमशीतल शरीरवाली तारागणोंके मध्यमें चन्द्रमाकी रेखाकी समान कोई स्त्री इधरको गई है३३

राम-क्या इससेभी आधिक दुःख है ? जो कुछ मुझे सुख होनेवाला था उसकोभी मैं जानही चुका, क्योंकि मुझे राज्य मिलते २ रहगया, अब मैं मरनाही अच्छा समझता हूं. यदि राज्य हो तो वह लक्ष्मणको हो ॥ ३४ ॥

ततो वामं तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य च दक्षिणम् ।
धन्यो वन्यशरण्यां तामरण्यानीं स्म गाहते ॥ ३५ ॥

किं च–

किष्किन्धाद्रौ रौद्ररुद्रावतारं
दृष्ट्वा रामो मारुतिं वाचमूचे ।
सीता नीता केनचित्क्वापि दृष्टा
दृष्टः कष्टं संहरन्प्राह वीरः ॥ ३६ ॥

पापेनाकृष्यमाणा रजनिचरवरेणाम्बरेण व्रजन्ती
किष्किन्धाद्रौ मुमोच प्रचुरमणिगणैर्भूषणान्यर्चितानि ।
हा राम प्राणनाथेत्यहह जहि रिपुं लक्ष्मणेनालपन्ती
यानीमानीति तानि क्षिपति रघुपुरः क्वापि रामाञ्जनेयः ॥ ३७ ॥

रामः–(सकरुणं सबाष्पम्)

जानक्या एव जानामि भूषणानीति नान्यथा ।
वत्स लक्ष्मण जानीषे पश्य त्वमपि तत्त्वतः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर अशुभसूचक काकका तिरस्कार करके और शुभसूचक ममोले पक्षीके शकुनको सामने लेकर वनके रहनेवाले अतिथियोंमेंसे श्रीरामचन्द्रजी झाडियोंमें घूमने लगे ॥ ३५ ॥

किष्किन्धा पर्वतपर रौद्र रसके स्वरूप रुद्रावतार पवनकुमार हनुमान्‌जीको देखकर यह वचन कहे कि क्या इधर किसीने कहीं सीता देखी है ? इतना सुनकर वीर हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीके कष्टको हरते हुएसे प्रसन्नताके साथ कहने लगे ॥ ३६ ॥

राक्षसोंमें परमपापी रावणके द्वारा हरी हुई हा राम ! हा प्राणनाथ ! हाय ! हाय ! मुझको बडा कष्ट है, इस शत्रुका लक्ष्मणके द्वारा नाश करो, इस प्रकार बार २ विलाप करके आकाशमार्गसे जाती हुई किसी स्त्रीने अनेक मणियोंसे जडे हुए अपने जिन गहनोंको किष्किन्धा पर्वतपर डाल दिया था, इन उन्हीं आभूषणोंको अंजनीकुमार श्रीरघुनाथजीके सामने अर्पण करते हैं ॥ ३७ ॥

रामचन्द्र–(दीनताके साथ आखोंमें आंसू भरकर) यह आभूषण जानकीकेही हैं, मैं केवल इतनाही जानता हूँ और कुछ नहीं, परन्तु लक्ष्मण ! तुमभी तो जानते हो, जरा ठीक २ देखो तो सही ॥ ३८ ॥

लक्ष्मणः-(सबाष्पम्)

कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे ।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥ ३९ ॥

रामः-(आभरणानि हृदये विन्यस्य गाढमालिंग्य)

सर्वेषु सत्स्वपि तवाभरणेषु हारो
नारोपितो हृदि चिरं हृदयंगतोऽपि ।
मुक्तार्थसूत्रगुणवेधविशुद्धराशि-
स्तत्पंक्तिभेदफलदारुणमित्यरोदीत् ॥ ४० ॥

(पुनरपि-)

अहह जनकपुत्री वक्त्रमुद्रामपश्य-
न्व्रजति परमहंसो नाक्षमो वापि गन्तुम् ।
तदुरुविरहवह्निज्वालया दग्धदेहः
किमुत पवनसूनोर्भूषणैः स्तम्भितो मे ॥ ४१ ॥

लक्ष्मण-(आंखोंमें आंसू भरके) नाथ ! मैं कुण्डलों और कंकणोंको तो नहीं पहिचानता (क्योंकि कभी दृष्टि उठाकर ऊपरकी ओरको नहीं देखा) केवल पाय-जेबोंकोही जानता हूँ, क्योंकि चरणोंमें नित्य प्रणाम करता था ॥ ३९ ॥

राम-(आभूषणोंको हृदयपर रखकर और सबको आलिङ्गन करके) तेरे पास सब गहनोंके होते हुएभी चित्तको प्यारा लगता हुआ, और जिसमें मोतियोंके पिरो-नेके डोरेमें श्रेष्ठ रत्न पुहरहे थे ऐसा हार बहुत दिनोंसे, परन्तु मैंने तेरे हृदयमें न पहराया, (क्योंकि-मैं बीचमें हार आपडनेके अन्तरकोभी नहीं सहसकता था) सो मैंने अन्य आभूषणोंको पहराकर हारको जो नहीं पहराया, यह पंक्तिभेद किया, हा ! क्या उसकेही फलसे मुझको यह दारुण दुःख उठाना पडा है, ऐसा कहकर रो पडे ॥ ४० ॥

(फिर कहने लगे) आह ! मुझको इतना कष्ट होरहा है, फिरभी जानकीके मुखकी छबिको न देखता हुआ यह मेरा परमहंस (जीवरूपी हंस) निकल क्यों नहीं जाता, प्रतीत होता है, यह जानकीके असह्य वियोगकी ज्वालासे भस्मीभूत होनेके कारण जानेमें असमर्थ होगया है। या हनुमान्जीके आभूषण लानेसे रुक गया है ॥ ४१ ॥

हनुमान्-(सानुनयम्)

श्रीराम क्षोणिपाल त्यज निजदयिताशोकमेकः सलोकं
लंकेशं जेतुमीशे तमपि कपिपतेराज्ञयाहं हनूमान् ।
सुग्रीवस्याथ सार्धं गिरिमवतरणं पादविन्यासलक्ष्मी-
निक्षेपादुत्पलाक्ष क्षपितरिपुबलं दर्शनं त्वं च देहि ॥ ४२ ॥

ततो हनूमान्सह लक्ष्मणेन रामेण सुग्रीवपुरःस्थितोऽभूत् ।
तांस्तत्र साक्षात्कपियूथनाथः पापानि दग्धुं दहनं ददर्श ॥ ४३ ॥

श्रुत्वा रामस्य कान्ताहरणमनिलजस्याननाद्वानरेन्द्रो
निःश्वस्यात्मीयमस्यानुवदति पुरतस्तद्बलाद्वालिनोऽपि ।
हा नाथे विद्यमाने किमिति रघुपतिस्तं निहन्तुं प्रतिज्ञा-
मारूढः प्रौढरोषानलबहलकलालंकृतोऽधिज्यधन्वा ॥ ४४ ॥

नत्वा ससंभ्रममथो जगदेकवीर-
मालिंगयन्रघुपतिं शुशुभे कपीन्द्रः ।

हनूमान्-(अनुनयपूर्वक) हे भूपाल श्रीराम ! आप जानकीका शोक न करें, कपिराज सुग्रीवकी आज्ञासे अकेला मैं हनुमानही लंकावासी राक्षसोंसहित लंकापति रावणको जीत सक्ता हूँ, अब आप सुग्रीवके भवनरूप पर्वतपर चलकर उसको अपने चरणअर्पणकी शोभासे कृतार्थ करिये, हे कमलनयन ! आपके दर्शनमात्रसे शत्रुओंका बल नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

तदनन्तर-श्रीराम और लक्ष्मणको साथ लिये हनुमान् सुग्रीवके सन्मुख गये उस समय कपिराज सुग्रीवने इन तीनोंको त्रिविध तापोंको भस्म करनेके निमित्त आये हुए दक्षिण गार्हपत्य और आहवनीय अग्निरूप समझा ॥ ४३ ॥

हनुमान्से श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्रीका हरण सुनकर वानरराज सुग्रीवने लम्बी श्वास ली, और इनको वालिके द्वारा अपनी स्त्रीके हरणका वृत्तान्त सुनाकर कहने लगा कि हा ! आपसे स्वामीके होते हुए मेरी यह दशा क्यों है ? उसी समय श्रीरघुनाथजीने परम क्रोधाग्निसे प्रदीप्त होकर धनुषपर रोदा चढाते हुए वालिका वध करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥

उस समय सुग्रीव जगत्में एक वीर श्रीरघुनाथजीको आदरसहित प्रणाम करके आलिङ्गन करते हुए ऐसी शोभाको प्राप्त हुए कि मानो चिरकालसे प्रियाका वियोग

तद्विस्मृतं पुनरिवाभ्यसते प्रियायाः
कन्दर्पकेलिषु पुनर्द्रुतभाविनीषु ॥ ४५ ॥

सुग्रीवः-

अये मरुत्तनय कोऽसौ चतुर्णां ताटकान्तकः ।

मारुतिः-

ये चत्वारो दिनकरकुलक्षत्रसन्तानवल्ली-
मालाम्लानस्तबकमधुपा जज्ञिरे राजपुत्राः ।
रामस्तेषामभवदमलस्ताटकाकालरात्रि-
प्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥ ४६ ॥

ततः-

श्रुत्वा वाली तदनु महतीं राघवस्य प्रतिज्ञां
तालान्सप्त प्रकृतिकुटिलान्प्रेरयामास योद्धुम् ।
सौमित्रिस्तानकृतसरलाञ्शेषपृष्ठस्थमूला-
न्भारेणांघ्रेरथ रघुपतिः संदधे दिव्यमस्त्रम् ॥ ४७ ॥

लक्ष्मणः-(सशङ्कं रामं प्रति) देव ज्ञात्वा बाणः प्रहर्त्तव्यः ।

होनेके कारण विस्मृत हुए और फिर शीघ्रही प्राप्त होनेवाली कंदर्पक्रीडाओंमेंके, प्रियाके आलिङ्गनका अभ्यास कर रहे हैं ॥ ४५ ॥

सुग्रीव-अयि मारुति ! इन चारों दशरथराजकुमारोंमेंसे ताडकाका वध करनेवाले कौनसे है ? ॥

हनुमान्-सूर्यवंशीय क्षत्रियोंकी सन्तानरूप लतामालाके खिले हुए पुष्पोंके गुच्छमें भौंररूप जो चार कुमार महाराज दशरथके यहां उत्पन्न हुए हैं, उनमें ताडकारूप कालरात्रिको नाश करनेके लिये प्रातःकालरूप और श्रेष्ठ चरित्रवाली कथारूप कदलीके मूलकन्द ये निर्मल रामही हैं ॥ ४६ ॥

(तदनन्तर) वालीने रामचन्द्रजीकी महती प्रतिज्ञाको सुनकर स्वभावसे कुटिल सात तालोंको युद्ध करनेके लिये भेजा, लक्ष्मणजीने जिनकी जड शेषजीकी पीठपर स्थित थी, उन सातों तालोंको चरणके भारसे सूधा करादिया, तब रघुनाथजीने अपने दिव्य अस्त्रको सम्हाला ॥ ४७ ॥

लक्ष्मण-(शङ्कित होकर श्रीरामचन्द्रजीसे) महाराज ! समझकर बाण छोडना

यतः—एकदैव शरेणैकेनैव भिन्नकलेवराः ।
म्रियन्ते सप्त तालास्तं घ्नन्ति हन्तारमन्यथा ॥ ४८ ॥

रामः—(सावज्ञम्)

मा भैषीर्मयि सौमित्रे राघवेऽधिज्यधन्वनि ।
सतां देहं परित्यज्य निर्जगामासतां भयम् ॥ ४९ ॥

(करेण बाणमालभ्य)

भावोऽस्ति चेत्कुशिकनन्दनपादयोर्मे
यद्यस्म्यहं द्विजतिरस्कृतिरोषहीनः ।
नान्यांगनासु च मनः शर सप्त ताला-
न्भित्त्वा तदा प्रविश भूतलमप्यगाधम् ॥ ५० ॥

एकेनैव शरेण बालकदलीकाण्डप्रभंगक्रमा-
त्कृत्तेषु प्रथमेषु दाशरथिना तालेषु सप्तस्वथ ।
अश्वाः सप्त जगन्ति सप्त मुनयः सप्ताब्धयः सप्त गाः
सत्यं सप्त च मातरो भयभृतः संख्यानुसाम्यादिह ॥५१॥

क्योंकि—एक समयही एकही बाणसे यदि इन सातों तालोंका शरीर वेधा जायगा तो ये मरसकते हैं, नहीं तो ये प्रहार करनेवालेकाही वध करेंगे ॥ ४८ ॥

राम—(अवहेलनाके साथ) लक्ष्मण भय न मानो, मुझ रघुवंशीके धनुष चढानेपर भय सत्पुरुषोंके शरीरको छोडकर (परस्त्री हरण करनेवाले वाली समान) दुर्जनोंके शरीरमें चला गया ॥ ४९ ॥

(बाणको हाथसे छूकर) यदि विश्वामित्रजीके चरणोंमें मेरी भक्ति है, यदि मैं ब्राह्मणोंके तिरस्कारकोभी सहकर क्रोध नहीं करता हूँ. और यदि मेरा मन कभीभी परस्त्रियोंपर नहीं चला है, तो रे बाण! तू इन सातों तालोंको फोडकर अगाध भूतलमें घुसा चलाजा ॥ ५० ॥

एकही बाणसे कोमल केलेके खम्भोंके काटनेके समान जब श्रीरामचन्द्रजीने सातों तालके वृक्षोंको काटडाला, तब सात संख्याकी समतासे भयभीत हुए सूर्यके सातों घोडे, सात लोक, सप्त ऋषि, सातों समुद्र, सातों द्वीप, सातों पर्वत और सातों माता यह सब निस्सन्देह काँपउठे ॥ ५१ ॥

रामबाणः-(सक्षोभम्)

बाणः प्रमाणमधिगम्य वसुंधरायाः
संबोधयन्निव भुजङ्गमभङ्गभीत्या।
ब्रह्माणमम्बरचरान्विधुनोति पक्षान्
पुङ्खावशेष इति रामकराद्विमुक्तः ॥ ५२ ॥

पौरंदरिः-(सक्रोधम्)

श्रुत्वा हतान्समरमूर्धनि सप्त तालान्
रामेण पापहृदयेन विनापराधम्।
कोपानलज्वलितहृत्कमलोऽथ वाली
रङ्गावतारमगमाद्गिरिचत्वरेषु ॥ ५३ ॥

तारा:-(सहर्षम्) अवश्यं भगवतः श्रीपुरुषोत्तमस्य रामचन्द्रस्य प्रसादादद्य चिरविरहिणः प्राणवल्लभस्य सुग्रीवस्य वक्षःपीठे लुठिष्यामीति मन्यमाना गिरिवरशिखरमारुह्य रामपौरंदरिसमरमाकाङ्क्षती चिन्तयामास।

रामका बाण-(क्षोभके साथ) श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे छूटकर पृथ्वीकी गहराई समान लम्बा हो शेषजीके नाश होनेके भयसे पक्षमात्र ऊपर शेष बचे हुए अपने भागको आकाशव्यापी पक्षीकों सरसराता हुआ मानो ब्रह्माजीको पुकारने लगे ॥ ५२ ॥

बाली-(क्रोधमें भरकर) विना अपराधही हत्या करने रूप पापसे जिनका हृदय व्याप्त है ऐसे श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा निरपराध सात तालोंका वध सुन क्रोधाग्निसे जिसका हृदयकमल भस्म होने लगा ऐसा वह बाली पर्वतके मैदानमें संग्राम करनेके लिये उतर आया ॥ ५३ ॥

तारा-(हर्षके साथ) अवश्यही भगवान् पुरषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके अनुग्रहसे आज चिरकालके विरही प्राणप्यारे सुग्रीवके वक्षःस्थलके ऊपर शयन करूंगी, ऐसा सोचके श्रेष्ठ पर्तके शिखरपर चढकर, रामचन्द्र और बालीका युद्ध होनेकी इच्छा करती हुई विचारने लगी।

तारा संत्यक्तहारा गिरिशिखरचरा स्रस्तधम्मिल्लभारा
शोकाब्धिप्राप्तपारार्पितमदनशरा वीरसुग्रीवदाराः ।
नारा नाराचधारा निजरमणरता तापिनः पापिनोऽस्य
प्राणाञ्छाणावतीर्णा हरतु कलिकलाशालिनो वालिनोद्य ॥ ५४ ॥

रामः–(सक्षोभं पौरन्दरिं गिरिगरिमगम्भीरमहिमानमव-
लोक्य सौमित्रिमित्रमनुस्मृत्याब्रवीत्) वत्स !

किं वाली वानराली बहलकलकलाहूतदेवेन्द्रवज्रं
वाञ्छत्याकृष्य योद्धुं शिव शिव तुमुलोत्कालसंचालितार्कः ।
प्रोद्यल्लांगूलवल्लीशिखरकवलितं चण्डदोर्दण्डकाण्ड-
भ्रान्तामूलाग्रशैलप्रहरणनिपुणः केन योद्धव्य एषः ॥ ५५ ॥

(सावष्टम्भं नारायणं बाणमादाय)

वेदोद्भवैर्द्विजगणेन पुराभिषिक्तो
मूर्धा समं त्वमपि बाणगुणेन मन्त्रैः ।
तत्तेजसा परवधूजनहारिणस्त्वं
प्राणान् गृहाण समरेष्वतिदारुणस्य ॥ ५६ ॥

हारको त्याग पर्वतोंके शिखरोंमें डोलती हुई जिसके केश बिखरे हुए हैं, शोक-समुद्रके पारको पानेवाली, कामदेवके बाणोसे व्याकुल वीर सुग्रीवकी नारी (मनमें विचारने लगी कि) आज शानपर धरे हुए रामके बाणोंकी धार दुःख देनेवाले, कलियुगी कार्य करनेवाले, इस पापी वालीके प्राणोंको हरलें ॥ ५४ ॥

रामचन्द्र–(क्रोधके साथ पर्वतके समान भारी और गम्भीर महिमायुक्त, इन्द्रके पुत्र वालीको देखकर लक्ष्मणजीको मित्रसमान मानकर कहने लगे कि) हे तात ! जो वानरोंके समूहोंके कलकल शब्दसे पुकारे हुए देवराजके वज्रको ऊपरको वेगसे जाती हुई पूछके लपेटमें डाल और छीनकर युद्ध करना चाहता है, जो भयानक पराक्रमसे सूर्यकोभी चलायमान कर देता है, जिसको प्रचण्ड भुजदण्डके बाणका घमण्ड है, और जो जडसे उखाडे हुए पर्वतोंके द्वारा युद्ध करनेमें अति निपुण है, ऐसे इस वालिके साथ शिव शिव भला कौन युद्ध कर सकता है, और इसके साथ युद्ध करनेके लिये कौनसा शस्त्र काममें लाना चाहिये ॥ ५५ ॥

(धैर्यके साथ नारायण बाणको लेकर) हे बाण ! पूर्वकालमें ब्राह्मणोंने वेद-

रामबाणः पौरंदरिश्च ब्रह्मतेजोधिगम्य परदारा-
पहरणपराभवं च ।

अथ रघुपतिबाणः प्राप्तवीरप्रमाणः
प्रलयदहनरोचिः कोटिविद्युन्मरीचिः ।
अकृत हृदयभेदं वालिनः सोप्यरोदी-
दनिहतपितृशत्रुः किं सशल्यो हतोऽस्मि ॥ ५७ ॥

रामः-(सकरुणं सविषादं च) वत्स सौमित्रे ! गिरिगह्वरेषु स्वयोनिविहितं महत्सुखमनुभवन्तं महावीरम् अनपराधिनं वालिनं हत्वा मन्दभाग्यः कथमहं जानकीसुखमनुभविष्यामि इति शिरो धुन्वन् पौरंदरिं व्याजहार ।

शस्त्रौघप्रसरेण रावणिरसौ यो दुर्यशोभागिनं
चक्रे गौतमशापयन्त्रितभुजस्थेमानमाखण्डलम् ।
कक्षागर्तकुलीरतां गमयता वीर त्वया रावणं
तत्संमृष्टमहो विशल्यकरणी जागर्त्ति सत्पुत्रता ॥ ५८ ॥

मन्त्रोंके द्वारा प्रत्यंचासहित तेरा मूर्धाभिषेक किया है, उसी तेजसे तू इस संग्राममें परस्त्री हरण करनेवाले अति कठोर वालीके प्राणोंको ले ले ॥ ५६ ॥

रामचन्द्रजीका बाण ब्रह्मतेजको और वालि परस्त्रीहरणके कारण तिरस्कारको प्राप्त होकर-

अनंतर वीर वालीकी थाह पाये हुए, प्रलयकालकी अग्निकी समान प्रचंड रोचमान, करोडों बिजलियोंके समान चमकीले रघुनाथजीके बाणने वालिके हृदयको फाड डाला, तब वह वालिभी रोकर यह कहने लगा कि हाय ! मैं पिता इन्द्रके शत्रु रावणको विना मारेही क्यों मारा गया, यह कांटा तो मरकरभी मेरे चित्तमें खटकताही रहैगा ॥ ५७ ॥

राम-(दया और खेदके साथ) तात लक्ष्मण ! पर्वतोंकी गुफाओंमें अपनी योनिके योग्य परमसुखका अनुभव करते हुए महावीर निरपराध वालिको मारकर मैं अभागा किस प्रकार जानकीके सुखको भोग सकूंगा, इतना कह अपना शिर धुनते हुए वालिसे कहने लगे कि-हे वानर ! वीर ! जिस रावणकुमार मेघनादने अनेकों शस्त्रोंका प्रहार करके गौतमके शापसे रुका है भुजबल जिनका ऐसे इन्द्रका

वाली–(प्राणांस्त्यक्तुमिच्छन्)

सुग्रीवोऽपि क्षमः कर्तुं यत्कार्यं तव राघव ।
किमहं न क्षमः कस्मादपराधं विना हतः ॥ ५९ ॥

रामः–(सबाष्पम्)

शुद्धिर्भविष्यति पुरन्दरनन्दन त्वं
मामेव चेदहह पातकिनं शयानम् ।
सौख्यार्थिनं निरपराधिनमाहनिष्य-
स्यस्मात्पुनर्जनकजाविरहोऽस्तु मा मे ॥ ६० ॥

पौरन्दरिः–

तथेत्युक्त्वा पुनः स्वर्ग्या गतिस्ते न भविष्यति ।
यावत्त्वां न हनिष्यामि स्थास्यसि त्वं यमालये ॥ ६१ ॥

(इति प्राणान्मुमोच ।)

हनूमान्–(स्वगतम्)

दासैरहो रघुपतिः परिभूयते किं
वैवस्वतादिभिरुवास तदालयेऽपि ।

अपयश किया था उस इन्द्रके अपयशको, बगलके भीतर रावणको कीडेकी समान दाबनेवाले तुमने धोकर दूर कर दिया और यह तुम्हारा सत्पुत्र अंगद तुम्हारे कांटेको दूर करनेके लिये जीवितही है ॥ ५८ ॥

वाली–(प्राणोंको त्यागनेकी इच्छा करता हुआ) हे राम ! आपके जिस कार्यको सुग्रीव कर सकता है, उसको क्या मैं नहीं कर सक्ता था, फिर बिना अपराध मुझे क्यों मारा ? ॥ ५९ ॥

राम–(नेत्रोंमें आँसू भरकर) हे इन्द्रपुत्र वाली ! जब तू मुझ पातकी निरपराधीको सुखकी इच्छासे सोतेमें मारेगा, तबही मेरे पिताकी शुद्धि होगी, इस तेरे मारनेके अपराधसे अब फिर मुझको जानकीका विरह न हो ॥ ६० ॥

वाली–तथास्तु कहकर बोला कि–जबतक मैं आपका वध न करूं, तबतक आप निज धामको न पधारें, किन्तु भूलोकमें अवतार धारण करते रहें ॥ ६१ ॥ ऐसा कहकर प्राण छोडादिये ॥

हनुमान्–(मनही मनमें) जो देव रामचन्द्रजी देवताओंके कथनको पालन कर-

यो देववाक्यमनतिक्रमयन्कियन्त
कालं निहत्य पुरुहूतसुतं तु देवः ॥ ६२ ॥

रामः–(कथंचिद्विषादं परित्यज्य पौरुषमवलम्ब्य)
राज्ये सुग्रीवमादौ सदयितमभिषिच्याङ्गदं यौवराज्ये
रामः सेनाधिपत्ये सपवनतनयान्वानरेन्द्रान्प्रतस्थे ।
लंकां संत्यज्य शंकां तदनु कपिभटैर्माल्यवत्युत्तमाद्रौ
वर्षाकालं गमयितुमचिरान्मन्त्रिभिः संमतोऽभूत् ॥ ६३ ॥
रामात्परः शूरतरो न कश्चित्पराभवः स्त्रीहरणान्न चान्यः ।
तथापि नाब्धिं प्रविवेश रामो बबन्ध सेतुं विजयासहिष्णुः ॥ ६४॥

(अपि च)
रामाद्बलीयान्न परोऽत्र कश्चिद्दारापहारान्न परोऽभिमानः ।
तथापि रामः शरदं प्रतीक्ष्य बद्धाम्बुधौ सेतुमरिं जगाम ॥ ६५ ॥

नेके निमित्त वालिको मारकर, वैवस्वतादिके सहित उनके स्थानमें निवास करते हुए, आश्चर्य है क्या वह रघुनाथजी दासोंसे तिरस्कार किये जाते हैं ॥ ६२ ॥

रामचन्द्र–(किसी प्रकार खेदको त्याग और धैर्य धरकर) पहिले स्त्रीसहित सुग्रीवको राज्यपर, अंगदको युवराजपदपर तथा पवनकुमारसहित वानरेन्द्रोंको सेनापतियोंके पदोंपर अभिषेक करके निःशंक हो लंकापर चढाई करचले इतना विचार होनेपर वीर वानरोंने वर्षाकालको उस माल्यवान् पर्वतपर बितानेकीही सम्मति दी, और रामचन्द्रजीनेभी इस बातको स्वीकार कर लिया ॥ ६३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीसे बढकर कोई परम शूरमा नहीं है, और स्त्रीहरणसे बढकर और कोई तिरस्कार नहीं है, तथापि श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रमें प्रवेश नहीं किया किन्तु सेतुही बाँधा ॥ ६४ ॥

(औरभी) इस संसारमें श्रीरामचन्द्रजीसे बढकर कोई दूसरा बली नहीं है, और स्त्रीको हर लेनेसे बढकर कोई अभिमान नहीं है, तथापि श्रीरामचन्द्रजीने वर्षाकालकी वाट देख, समुद्रमें सेतु बांधकरही शत्रुपर चढाई की ॥ ६५ ॥

रामः—(तत्र जनकतनयाकमनीयतामनुस्मृत्य)

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन गलिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणमेव विद्रुमदलं श्यामेव हेमप्रभा ।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं
सीतायाः पुरतस्तु हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव ॥ ६६ ॥

(कादम्बिनीताण्डवाडम्बरं विलोक्य)

यत्त्वन्नेत्रसमानकान्तिसलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी ।
येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते ॥ ६७ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके वालिवधो नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽङ्कः ।

रामः—(वानरभटानाचष्टे) भो भो सुग्रीवसैनिकाः शृणुत-

व्यसने महति प्राप्ते स्थिरैः स्थातुं न युज्यते ।
लंकां निःशंकमालोक्य क इहागन्तुमर्हति ॥ १ ॥

राम—(जानकीकी कमनीयताका स्मरण करके) जानकीके सामने चन्द्रमा मानो अंजनसे पुतगया, हरिणियोंकी दृष्टि मानों नीचेको झुकगई, मूंगोंकी लाली मानो अतिमलिन हो गई, सुवर्णकी प्रभा मानो काली पडगई और प्रियाके थोडेसे भाषणके सामनेही कोकिलाओंके कंठोंमें मानो कठोरता प्रतीत होने लगी, तथा मोरोंकी चन्द्रकायें निन्दनीय होगईं ॥ ६६ ॥

फिर (मेघमालाके परम आडम्बरको देखकर) तेरे नेत्रोंकी समान कांति-वाला यह प्रसिद्ध नीलकमल जलमें डूबगया, और हे प्रिये ! तेरे मुखकी कान्तिका अनुकरण करनेवाला चन्द्रमाभी मेघोंसे छिपगया, तथा तेरी गतिकी समान चलने-वाले जो राजहंस थे वेभी चले गये इससे प्रतीत होता है कि, तेरी समतावाले जिन पदार्थोंसे मैं जी बहलाता था मेरे उस विनोदकोभी दैव नहीं सह सकता ॥ ६७ ॥

इति भाषाटीकामें वालिवध नामक पञ्चम अंक समाप्त ।

राम—(वीर वानरोंसे कहनेलगे कि) रे रे सुग्रीवके सैनिको सुनो, बडी भारी

हनूमान्-(सहर्षं दोस्तम्भास्फालनकेलिमभिनीय निजप्रचण्डदोर्दण्डयोर्महतीं प्रौढिं नाटयति) देव पश्य-

अष्टांगुलमयः कायः पुच्छो मे द्वादशांगुलः ।
बाहू मे पश्य भो नाथ कथं रत्नाकरं तरे: ॥ २ ॥

रामचन्द्रः-(सविस्मयो बभूव)

ततो जाम्बवान्-देव, रुद्रावतारोऽयं मारुतिः रुद्रस्तुतिः क्रियताम् ।

रामचन्द्रः-(रुद्रस्तुतिं कृत्वा) भो भो मारुते, त्वया विहीनः कः कर्तुं समर्थोऽस्ति ।

तत्र हनूमान्महावीराद्भुतपराक्रमः (सहर्षं वाक्यम्) देवाकर्णय

कूर्मो मूलवदालवालवदपां नाथो लतावद्दिशो
मेघाः पल्लववत्प्रसूनफलवन्नक्षत्रसूर्येन्दवः ।
स्वामिन्व्योमतरुर्मम क्रमतले श्रुत्वेति गां मारुतेः
सीतान्वेषणमादिशन्दिशतु वो रामः सहर्षः श्रियम् ॥ ३ ॥

विपत्ति आपडनेपर धैर्यवान् पुरुषभी स्थिर नहीं रहसकते हैं, सो तुममें कोई ऐसा धैर्यवान् है कि जो निःशंक लंकाको देखकर फिर यहीं लौट आनेकी शक्ति रखता हो ॥ १ ॥

हनूमान्-(बडी प्रसन्नताके साथ भुजदण्डोंको ताल देनेका अभिनय करके) अपने भुजदण्डोंकी परम उत्कृष्टता दिखाके कहने लगे कि, भगवन् देखिये ! मेरा शरीर आठ अंगुलका और पूंछ बारह अंगुलकी है, तथा मेरी भुजाओंकोभी देखलीजिये, तो फिर हे नाथ ! देखिये मैं समुद्रको कैसे तैर सक्ता हूं ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी आश्चर्यमें होगये.

तब जाम्बवान्ने कहा कि-हे देव ! ये पवनतनय रुद्रके अवतार हैं, इस कारण रुद्रदेवकी स्तुति करिये।

तब श्रीरामचन्द्रजी-(रुद्रदेवकी स्तुति करके कहने लगे कि) हे पवनकुमार! तुम्हारे सिवाय इस कार्यको कौन करसकता है ?

तब महावीर अद्भुतपराक्रमी हनूमान्जी (परम प्रसन्न होकर यह वाक्य बोले कि) सुनिये-देव !

कूर्म जिसकी जडसमान है; समुद्र जिसके थामलेकी समान हैं, दिशायें जिसकी लताकी समान हैं, मेघमण्डल जिसके पत्तोंकी समान हैं, तारागण और सूर्य चन्द्रमा

देवाज्ञापय किं करोमि सहसा लंकामिहैवानये
जम्बूद्वीपमितो नये किमथवा वारांनिधिं शोषये ।
हेलोत्पाटितविन्ध्यमन्दरगिरिः स्वर्णत्रिनेत्राचल-
क्षेपक्षुण्णविवर्तमानसलिलं बध्नामि वारांनिधिम् ॥ ४ ॥

अपिच–

देवाज्ञां देहि राज्ञां त्वमसि कुलगुरुः शोषये किं पयोधिं
किंवा लंकां सलंकाधिपतिमुपनये जानकीं मानकीर्णाम् ।
सेतुं बध्नामि मत्तः स्फुटितगिरितटीभूतभङ्गातरङ्गा-
दुद्भ्राम्यन्नक्रचक्रोऽपि च मकरकुलग्राहचीत्कारघोरम् ॥ ५ ॥
किं प्राकारविहारतोरणवतीं लंकामिहैवानये
किं वा सैन्यसमुद्धृतं च सकलं तत्रैव संपादये ।
हेलान्दोलितपर्वतोच्चशिखरैर्बध्नामि वारांनिधिं
देवाज्ञापय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम ॥ ६ ॥

जिसके फूल फलोंकी समान हैं, हे नाथ! ऐसा आकाशरूपी वृक्ष मेरे चरण उठाने और रखनके नीचे दबा हुआ है, हनूमान्‌जीके ऐसे कथनको सुनकर जिन्होंने सीताकी खोज करनेकी आज्ञा दी, वह प्रसन्नतायुक्त श्रीरामचन्द्रजी तुमको लक्ष्मी दे ॥ ३ ॥

(हनुमान्) महाराज ! आज्ञा दीजिये मैं कौन कार्य करूं क्या अभी लंकाको यहां उठालाऊं, या जम्बूद्वीपको लंकाके समीप पहुंचा दूं, अथवा समुद्रको सुखा-डालूं, या कहिये तो सहजमेंही उखाडे हुए विन्ध्य, मंदराचल सुमेरु और कैलाशको डाल २ कर समुद्रके जलको विलोडकर उसे पाट दूं ॥ ४ ॥

(औरभी) अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं समुद्रको सुखा दूं या रावणसहित लंकापुरीकोही यहां ले आऊं, या पतिव्रत धर्ममें बढी हुई जानकी माताको लिवा लाऊं, अथवा कहिये तो समुद्रका पुल बांध डालूं, जिससे कि अभी मेरे तोडे हुए पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रमेंके जलजंतुओंका नाश होने लगे, और तरंगोंके साथ उछ-लते हुए नाके मच्छ और ग्राहोंके समूहोंका घोर चीत्कार होने लगे ॥ ५ ॥

हे देव ! क्या परकोटे, विहारके स्थान और बडे २ द्वारोंवाली, लंकाकोभी यहां ले आऊं, या रावणकी सब सेनाको लंकापुरीमेंही नष्ट कर डालूं अथवा सहजमेंही उठाये हुए पर्वतोंके ऊंचे २ शिखरोंसे समुद्रको पाट दूं हे देव ! आज्ञा दीजिये मैं क्या करूं इन मेरे भुजदण्डोंके लिये सब कुछ साध्य है ॥ ६ ॥

रामः–(सत्वरं करमुद्रां समुद्धृत्य) वीरमारुते,

मुद्रा समुद्रमुल्लंघ्य शीघ्रमाश्वास्य जानकीम् ।
विन्यस्य पुरतस्तस्या आगच्छ मयि जीवति ॥ ७ ॥

हनूमांस्तथेति श्रीरामसुग्रीवौ प्रणम्य समादाय मुद्रां समुद्रो-
पकण्ठं पीठावतारमासाद्य सद्योऽचिन्तयत्

एते ते दुरतिक्रमाः क्रममिलद्घूर्णोर्मिमर्मच्छिदः
कादम्बेन रजोभरेण ककुभो रुन्धन्ति झञ्झानिलाः ।
गाढाम्रेडनरूढनीरदघटासंघट्टनीलीभव-
द्व्योमास्फोटकटाहनिर्झरपयोवेणीकणग्राहिणः ॥ ८ ॥

धैर्यमवलम्ब्योद्यल्लांगूलास्फालकेलिव्याकुली-
कृताम्बरचरः सज्जो बभूव–

अथ सविलसदम्भःस्तम्भिताक्षिप्रकाशं
जलचरखलखेलास्फालनाचालिताशम् ।
जलनिधिमधिवीरोल्लंघितुं जांघिकत्वं
खगपतिरिव चण्डोड्डीनमङ्गीचकार ॥ ९ ॥

रामचन्द्र–(शीघ्रही हाथमेंसे अंगूठी उतारकर कहने लगे कि) हे पवनकुमार ! यह अंगूठी ले और शीघ्रही समुद्रको लांघ जानकीको धैर्य दे और उसके सामने इसको रखकर मेरे जीते २ ही शीघ्र लौट आओ ॥ ७ ॥

हनुमान्–श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको वैसेही मानकर, श्रीरामचन्द्र और सुग्रीवको प्रणाम कर तथा अंगूठीको लेकर समुद्रके एक ऊंचे स्थानपर आपहुंचे और सहसा विचारने लगे, कि यह कठिनतासे लांघने योग्य क्रमसे मिलकर घूमती हुई तरंगोंके द्वारा लोकोंके मर्मस्थानमें पीडा पहुंचानेवाले बडी भारी आंधीके मिलनेसे बढी हुई मेघघटाके संयोगसे श्यामवर्ण हुए आकाशमें झझरे ब्रह्मकटाहमेंसे टपकते हुए गंगाके प्रवाहके जलकणोंको ग्रहण करनेवाले यह वर्षाके पवन कदम्बके रजोंसे दिशाओंको ढकते हैं ॥ ८ ॥

धैर्य धरकर ऊपरको उठी हुई पूंछको हिलानेकी क्रीडासे आकाशचारी जीवोंको व्याकुल करते हुए, तैयार हो गये और जलके विलाससे नेत्रोंकी दृष्टिको चौंधाने-वाले और जलचरोंकी निरन्तर क्रीडाके उत्पातोंसे दिशाओंको शब्दायमान करते

लांगूलोत्तालकेतुर्नभसि पृथुगतिः स्फारसीमन्तिताभ्रः
स्फूर्जत्प्रौढोरुवेगोल्ललितजलनिधिः पृष्ठकृष्टोग्रसत्त्वः ।
दूरात्सिन्दूरपूरारुणमरुणरुचिस्तेजसः संविभागैश्चक्रे-
दिग्वारणानां कटितटमभितः सूर्यविद्धाम्बुदाभम् ॥ १० ॥

तत्रावसरे समुद्रादुत्थितो मैनाकः-

विश्रान्तस्तत्र हर्षात्सपदि जलधिना प्रेरितो रत्ननाभो
मैनाकः काञ्चनाङ्गस्तुहिनगिरिसुतः प्राह दूरागतस्त्वम् ।
हंहो दूराध्वखेदं जहि मम शिखरे प्राप्य तस्येति वाचं
स्पृष्ट्वांगुल्या तदग्रं भुजरयपवनापूरिताशं जगाम ॥ ११ ॥
वेलातटे शालतमालमालां विलोकमानः सहसाञ्जनेयः ।
उल्लोलयन्वालधिवल्लिमुच्चैः कल्लोलिनीवल्लभमुल्ललंघे ॥ १२ ॥

हुए समुद्रको लांघनेके लिये हनुमान्जी शीघ्रगामी गरुडजीकी समान आकाशमें उडनेकी प्रचण्डगतिसे चल दिये ॥ ९ ॥

आकाशमें पताकाकी समान पूंछको उठाये, बडी २ डिगोंसे छलांगें मारते, कुलाचोंसे मेघोंको फाडते, दौडते, जंघाओंके परमवेगसे समुद्रके जलको उछालते, पीठसे बडे २ राक्षसोंको खैंचते सिन्दूरकी समान रक्तवर्ण दिग्गजोंके कटितटके चारों ओर अपने शरीरकी कान्तिको फैलाकर सूर्ययुक्त मेघमण्डलकी समान दृश्य करते हुए हनुमान्जी चलने लगे ॥ १० ॥

उसी समय मैनाक पर्वत समुद्रमेंसे उठकर कहने लगा कि, हे पवनतनय महावीर ! पक्ष काटनेवाले इन्द्रके भयसे मैं यहां छिपा हुआ रहता हूं, मेरी नाभिमें अनेक रत्न हैं मैं हिमालयका पुत्र सुवर्णके शरीरवाला मैनाक, समुद्रकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना करता हूं कि तुम दूरसे आये हो मेरे शिखरपर ठहरकर मार्गके श्रमको दूर करो, इसकी यह वाणी सुन मारुतिने उसके शिखरके अग्रभागको चरणकी अंगुलिसे छूदिया, और भुजाओंकी वेगकी पवनसे दिशाओंको भरते हुए आगेको चल दिये ॥ ११ ॥

समुद्रके तटपर शाल और तमालके वृक्षोंकी पंक्तिको देखते हुए अंजनीपुत्र हनुमान्जी पुच्छलताको ऊपर फहराते हुए अनायासहीमें नदीनाथ समुद्रके पार हो गये ॥ १२ ॥

अथ दशरथसूनोराज्ञया वायुपुत्रो
रजनिचरपुरीमालोक्य भूत्वा द्विदंशः ।
अकलितपरिमाणो मात्रया सत्रपस्तां
क्षिपति जनकजाग्रे शिंशपाग्रावतीर्णः ॥ १३ ॥

जानकीं नमस्कृत्य मारुतिः—

मातर्जानकि, को भवानिह, मृगः, केनात्र संप्रेषित-
स्त्वद्दौत्येन रघूत्तमेन किमिदं हस्तेऽस्ति तन्मुद्रिका ।
दत्ता तेन तवैव तां निजकरादालभ्य चालिंग्य च
प्रेम्णाश्रूणि ससर्ज सम्यगुदभूद्गात्रेषु रोमोद्गमः ॥ १४ ॥

हनुमानविरलगलदश्रुपूर्णलोचनाभ्यां सौवर्णमंगुलीयकं
मन्यमानां जानकीं संभावयामास । हे भामिनि-
सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथिलि ।
प्रेषितं रामचन्द्रेण सुवर्णस्यांगुलीयकम् ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर पवनपुत्र हनुमान्‌ने दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा जिसकी कल्पनाभी न की जा सके ऐसे सार राक्षसपुरी लङ्काको देखकर मच्छरकी समान रूप धारण कर शरीरके आकारसे लज्जायुक्त अशोकके वृक्षसे उतर उस मुद्रिकाको जानकीके आगे डाल दिया ॥ १३ ॥

जानकीको प्रणाम करके हनुमान्‌जी—मातः जनकनन्दनी ! जानकी—तू कौन है यहां ? हनुमान्—वानर । जानकी—यहां किसने भेजा है ? हनुमान्—तुम्हारे लिये सन्देशा लेकर रघुनाथजीने । जानकी—यह हाथमें क्या है ? हनुमान्—उनकी अंगूठी है, और उन्होंने तुम्हारेही लिये दी है, जानकी—उस अंगूठीको अपने हाथसे उठा और हृदयसे लगाकर प्रेमके कारण आंसू गिराने लगीं, तथा उनके अंगोंपर उस समय खूब रोमांच हो आये ॥ १४ ॥

हनुमान् निरन्तर गिरते हुए आंसुओंसे भरे नेत्रोंसे सुवर्णकी अंगूठीको मान देनेवाली जानकीको आश्वासन देने लगे कि हे भामिनि ! सुन्दर रंगवाले सुन्दर रामनाम वर्णोंसे युक्त दश मासे सोनेकी यह अंगूठी हे माता जानकी ! श्रीरामचन्द्रजीने तुम्हारे लिये भेजी है ॥ १५ ॥

जानकी–आशालेशमासाद्य क्षणमश्रूणि प्रमृज्य
मुद्रिकाव्याजेन मारुतिं प्रति–

मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपादाः सुखं
सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया ।
एनां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना
रामस्त्वद्विरहेण कङ्कणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान् ॥ १६ ॥

अत्रांगुलीयकमणौ प्रतिबिम्बमासी-
द्रामस्य सादरमतीव विलोकयन्ती ।
मद्रूप एव किमभून्मम वीक्षयेति
मीमांसया जनकराजसुता मुमोह ॥ १७ ॥

(कथंचिच्चेतनां प्राप्य)

अये मरुत्तनय यद्यंगुलीयकमेव कंकणमभूत्स्वामिनो राम-देवस्य तर्हि किमिव तनुतां गतः ?

जानकी–(कुछेक आशा पाकर और कुछ देरमें आंसुओंको पोंछकर, अंगूठीके मिससे हनुमान्‌जीके प्रति)

हे मुद्रिके ! लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीके चरण हैं तो प्रसन्न ?, यह सुन हनुमान्‌जीने कहा कि हे भगवति ! तुम इस चिन्तासे अपने चित्तको दुःखित मत करो, जनकराजकुमारी ! इस मुद्रिकाको अब तुम दूसरे नामसे पुकारो क्योंकि तुम्हारे विरहके कारण श्रीरामचन्द्रजीने अब इसको चिरकालके लिये कंकणका स्थान दे दिया है ॥ १६ ॥

इस अंगूठीके नगीनेमें बडे आदरके साथ श्रीरामचन्द्रजीके नामके अक्षरोंको देखती हुई सीता उसमें अपनाही प्रतिबिम्ब देखने लगी अथवा मणिमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर भ्रममें पड गई की इसमें तो श्रीरामचन्द्रजीका चित्र था क्या प्राणनाथ मेरी चिन्तासे मेराही रूप हो गये ऐसे विचारमें जनककुमारी मूर्छित होगई ॥ १७ ॥

(किसी प्रकार चेतना पाकर) अयि पवनकुमार ! यदि अँगूठीही प्राणनाथका कंकण होगई तो यह तो बताओ कि वे किसके समान दुर्बल हो गये हैं ?

हनुमान्-

स्वभावादेव तन्वाङ्गि त्वद्वियोगाद्विशेषतः ।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गतः ॥ १८ ॥

जानकी-

चन्द्रो यत्र दिनेशदीधितिसमः पद्मं स्फुलिंगोपमं
कर्पूरः कुलिशोपमः शशिकला शम्पासमा भासते ।
वायुर्वाडववह्निवन्मलयजो दावाग्निवत्सांप्रतं
संदेशं नय रामसंनिधिमितो यात्रां द्रुतं कारय ॥ १९ ॥

हनुमान्-

किं दूरमिन्दुमुखि रामशिलीमुखानां
किं दुर्गमर्गलभिदां हरियूथपानाम् ।
दैवं प्रसन्नमिव देवि तवाद्य सत्यं
रक्षांसि कानि कुपितस्य सलक्ष्मणस्य ॥ २० ॥

अत्रान्तरे जानकीं सप्रपञ्चं पृच्छन्हनुमान्-मातः कुत्रास्ते राजवाटिका ?

हनुमान्-हे दुर्बलाङ्गी ! एक तो महाराज स्वभावसेही दुर्बल थे, और तुम्हारे वियोगमें तो अब ऐसे विशेष दुर्बल हो गये हैं कि-जैसे प्रतिपदाके दिन पढनेवाले विद्यार्थीकी विद्या क्षीण हो जाती है ॥ १८ ॥

जानकी-जहां चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंकी समान, कमल अग्निके कणोंकी तुल्य, कपूर वज्रकी सदृश, चन्द्रमाकी कला बिजलीकी समान, वायु वडवानलकी समान, और चन्दन अग्निकी समान प्रतीत होता है; इस कारण हे पवनकुमार ! इस संदेशेको लेकर तुम शीघ्रही यहाँसे श्रीरामचन्द्रजीके समीप चले जाओ (और उनको लिवाकर लाओ) ॥ १९ ॥

हनुमान्-हे चन्द्रवदनि ! श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंको क्या दूर है ? परकोटोंके तोडनेवाले वानरोंको क्या दुर्गम है ? हे देवि ! मुझे तो दैव प्रसन्नसा प्रतीत होता है यदि लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीको क्रोध आगया तो मैं इस समय तुमसे सत्य कहता हूं कि-यह राक्षस विचारे हैं ही क्या ॥ २० ॥

इसी वार्त्तालापके बीचमें जानकीसे बातोंही बातोंमें हनुमान्‌जीने पूछा कि-माता ! राजा रावणकी बगीची कहाँ है ॥

दर्शयति जानकी-

रे पुत्र पश्चिमदिग्भागेनास्यास्ति वाटिका । (हनूमान् उद्यल्लांगूलप्रचण्डरूपेण प्रचलितः)-

इत्युक्त्वा रजनीचरस्य हनुमानुद्भिद्य लीलावनं
वीरं तत्सुतमक्षमात्तपरिघाघातैर्जघानागतम् ।
तत्कोपारुणलोचनेन्द्रजयिना प्राङ् निष्फलत्वाद्धृतं
ब्रह्मास्त्रेण विगर्हितेन विधिना बद्धो विदग्धः कपिः ॥ २१ ॥

रावणः-(तमालोक्य)

रे रे वानर को भवानहमरे त्वत्सूनुहन्ताहवे
दूतोऽहं खरखण्डनस्य जगतां कोदण्डदीक्षागुरोः ।
मद्दोर्दण्डकठोरताडनविधौ को वा त्रिकूटाचलः
को मेरुः क्व च रावणस्य गणना कोटिस्तु कीटायते ॥ २२ ॥
ईषत्सज्जनमैत्रीव नाभिद्यत कपेस्तनुः ।
निहता चन्द्रहासेन रावणेनातिरंहसा ॥ २३ ॥

(जानकी दिखाती हैं) रे पुत्र ! इस बगीचीके पश्चिम भागमें वह बगीची है, हनुमान्-(पूंछको उठाये प्रचण्डरूपसे चलदिये) सीताजीके इस प्रकार कहने पर हनुमान्जीने रावणके लीलाबनको उजाडकर और उस रावणके पुत्र अक्षकुमारके युद्ध करनेको आनेपर किसीसे मुद्गर छीन उससे उसको यमपुर पहुंचादिया. तदनन्तर हनुमान्जीके ऊपर क्रोधके कारण लाल लाल नेत्रवाले मेघनादके पहिले निष्फल होनेके कारण निंदा किये हुए, ब्रह्माजीके अस्त्रसे हनुमान्जी बँधगये ॥ २१ ॥

रावण-(हनुमान्जीको देखकर) रे रे वानर ! तू कौन है ? हनुमान् अरे ! मै संग्राममें तेरे पुत्र अक्षको मारनेवाला, खरदूषणादिके हन्ता जगत्में धनुर्विद्याके गुरु श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूं, मेरे कठोर भुजदण्डोंकी कठोर झपेटमें त्रिकूटाचल सुमेरु पर्वत क्या है ? और रावणकी तो गिनतीही क्या, ऐसे ऐसे करोडों कीडे कुचल जाते हैं ॥ २२ ॥

रावणने बडे वेगके साथ हनुमान्जीके ऊपर चन्द्रहास नामक तलवारका प्रहार किया, परन्तु सज्जनकी मित्रताके समान हनुमान्जीका शरीर उससे कुछभी खंडित न हुआ ॥ २३ ॥

लांगूले चैलतैलप्लुतबहलशणैर्वेष्टिते दीप्यमानो
रक्षोभिर्वीक्षितोऽग्निर्द्विजपरुषगिरा राघवो यद्यतुष्टः ।
तुष्टो यद्याज्यहोमैस्त्वमपि रघुपतेर्यद्यहं भक्तियुक्ता
संततः प्रार्थितो मा तदिह हनुमतः सीतया शीतलोऽभूत् २४॥
वह्निर्बभौ वानरपुच्छजन्मा स दाह्य लङ्कां खमिवोत्पतिष्णुः ।
रामाद्भयं प्राप्य किल प्रतापः पलायमानो दशकंधरस्य ॥ २५ ॥
पलानि भुक्त्वा चपलः पलाशिनां हुताशनस्तृप्तिमुपागतः परान् ।
विराजते स्म प्रतियातनाछलाज्जलानि चाब्धौ तृषितः पिबन्निव २६

रावणः—(स्वगतम्)

यद्ययं रुद्रो मारुतिस्तर्हि किमिति रुद्रभक्तस्य मे नगरीं दहति
अहह ज्ञातम् ।
तुष्टः पिनाकी दशभिः शिरोभिस्तुष्टो न चैकादशमो हि रुद्रः ।
अतो हनूमान्दहतीति कोपात्पंक्तेर्हि भेदो न पुनः शिवाय ॥२७ ॥

हे अग्निदेव ! यदि श्रीरामचन्द्रजी ब्राह्मणोंको किसीके दुर्वचन कहने पर असंतुष्ट होते हैं, औरयदि तुम घृतके होमोंसे संतुष्ट हो, और यदि रामचन्द्रजीमें मेरी भक्ति है तो राक्षसोंके कुतूहल देखतेमें तेलसे भीगे पुराने वस्त्र और बहुतसे सनसे लिपटी और जलती हुई पूंछसे हनुमान्को कष्ट न दो, इस प्रकार सीताजीके प्रार्थना करने पर अग्नि शीतल होगया ॥ २४ ॥

वह हनुमान्जीकी पूंछसे उत्पन्न हुआ अग्नि लंकाको भस्म करके आकाशमें उडता हुआ ऐसा प्रतीत होता था कि--मानो रावणका प्रतापही रामचन्द्रजीके भयसे भागा जा रहा हो ॥ २५ ॥

जिसमें लपट उठरही हैं ऐसा अग्नि मांसभक्षी राक्षसोंका मांस भक्षण करके परम तृप्तिको प्राप्त हो, और ऐसी शोभाको प्राप्त हुआ कि मानो समुद्रके जलमें प्रतिबिम्बित हुई लपटोंके बहानेसे प्यासा हुआ समुद्रमें जल पीरहा है ॥ २६ ॥

रावण—(अपने मनही मनमें) यदि यह पवनकुमार रुद्रके अवतार हैं तो मुझ रुद्रभक्तकी नगरीको क्यों भस्म करे डालते हैं ? ओहो समझगया—

शिवजी तो दश मस्तकोंसे प्रसन्न होगयेथे, परन्तु ग्यारहवें रुद्र प्रसन्न न हुए थे इसी कारण हनुमान् कोपकर लंकाको भस्म कर रहे हैं, सो ठीकही है क्योंकि पंक्तिका भेद कभी मंगलदायक नहीं होता ॥ २७ ॥

(अपि च)

अब्धिः किं वडवानलेन तरणेर्बिम्बेन किं चाम्बरं
मेघः किं चपलाचयेन शशिभृत्किं भालनेत्रेण वा ।
कालः किं क्षयवह्निनेन्द्रधनुषा धाराधरः किं महा-
न्मेरुः किं ध्रुवमण्डलेन स कपिः पुच्छेन खे राजते ॥ २८ ॥

अथ राक्षसाः–

मरुत्पुत्रस्त्वेकः कपिकटकरक्षामणिरसौ
समुद्यल्लांगूलो ध्वज इव समाश्लिष्टगगनः ।
पुनः प्रत्यायास्यत्यहह कपिसैन्ये प्रचलिते
पदं प्रोचुर्नीचैर्भयचकितलङ्कापुरजनाः ॥ २९ ॥

अथाह गगनमण्डलस्थो मारुतिः–

एकोऽहं पवनात्मजो दशमुख त्वं चापि कोटीश्वर-
स्त्वां जित्वा समरे प्रभोः प्रणयिनीं सीतां च नेतुं क्षमः ।
किं तूत्थाप्य भुजं पुरा भगवता रामेण सुग्रीवतो
हत्वा दक्षिणपाणिना वसुमतीं त्वां हन्तुमुक्तं वचः ॥ ३० ॥

(औरभी) क्या वडवानलसे समुद्र शोभित हो रहा है ? क्या सूर्यमंडलसे आकाश सुशोभित हो रहा है ? क्या बिजलियोंके समूहोंसे मेघमण्डल शोभित है ? क्या जिसमें अग्नि धक २ कर रहा है ऐसे तीसरे नेत्रसहित शिव हैं ? क्या प्रलयाग्निसहित महाकाल है ? क्या इन्द्रधनुषधारी घोर मेघ है ? क्या ध्रुवमण्डल-युक्त सुमेरु पर्वत है ?(जान लिया) यह दहकती हुई पूंछवाले वह पवनकुमार हनुमान्‌जीही आकाशमें विराज रहे हैं ॥ २८ ॥

(राक्षसगण) वानरोंकी फौजकी रक्षका सरदार ऊँची पूँछवाला पताका (झंडी)-की समान आकाशको उडनेवाला यह अकेला हनुमान्‌ही ध्वजाकी समान पूंछ उठाय आकाशतक पहुंचा है जिस समय वानरोंकी सेना चलकर आवेगी उस समय फिरभी इस लंकामें आवेगा इस प्रकार भयसे चकित हो लंकाके रहनेवाले धीरे २ आपसमें कहने लगे ॥ २९ ॥

इसके उपरान्त आकाशमें स्थित हुए हनुमान्‌जी बोले हे दशानन ! मैं तो पवनका पुत्र अकेलाही हूँ और तू करोडोंका अधीश्वर है, तोभी मैं रणमें तुझसे विजय प्राप्त

इत्युक्त्वा दशग्रीवनगरीं भस्मसात्कृत्वा रक्षितामशोकवनिकामागम्य जानकीं प्रणम्य रामाभिज्ञानं याचते स्म हनूमान् ॥

मैथिली—

शिखां धूमशिखां शत्रोः कालव्यालवधूमिव ।
उद्यम्यास्य शिरोरत्नं संज्ञानं स्वामिने ददौ ॥ ३१ ॥

(इति प्रथममभिज्ञानम् ।)

(तथा च चित्रकूटपर्वते—)

वक्षोभिचारि चरुभाण्डमिव स्तनं यो
देव्या विदेहदुहितुर्विददार काकः ।
ऐषीकमस्त्रमधिकृत्य तदा ततोऽक्ष्णा
काणीचकार करुणो रघुराजपुत्रः ॥ ३२ ॥

(इति द्वितीयमभिज्ञानम् ।)

कर स्वामीकी पतिव्रता सीताको ले जा सकता हूँ, परन्तु पहिले भगवान् रामचन्द्रजीने अपनी भुजाको उठाकर दाहिने हाथसे पृथ्वीको ताडित कर स्वयं तेरा वध करनेकी सुग्रीवसे प्रतिज्ञा की है ॥ ३० ॥

ऐसा कहकर हनुमान्‌जी रावणकी पुरी (लंकाको) भस्मीभूत करके अग्निसे न जली अशोकवाटिकामें आ जानकीजीको प्रणाम करके श्रीरामजीके लिये निशानी माँगने लगे ।

जानकीने शत्रुके कालरूप सर्पकी स्त्रीकी समान धूमशिखा (धूमकेतुकी पूँछ) की तुल्य अपनी चोटीको खोलकर उसमेंसे अपनी चूडामणी स्वामी रामचन्द्रजीके निमित्त निशानी दी ॥ ३२ ॥

(यह पहिली निशानी हुई ।)

(चित्रकूट पर्वतमें) जिस काक (जयन्त) ने छातीमें रहनेवाले चरुके पात्रकी समान [मुझ] जानकीदेवीके कुचोंको विदीर्ण किया था, तब तृण (तुनके) के बनाये हुए बाणको चढाकर करुणाकर रामचन्द्रजीने उस काकको एक नेत्रसे काना कर दिया था ॥ ३२ ॥

(यह दूसरी निशानी हुई ।)

मनःशिलायास्तिलकं तथा मे गण्डस्थले पाणितलेन मृष्टम् ।
स्मरेति संज्ञानमपि प्रयच्छ जीवाम्यतो राघव मासमात्रम् ॥३३॥

(इति तृतीयमभिज्ञानम् ।)

हनूमान्-

रत्नं यत्नाद्गृहीत्वा तदनु कपिभटश्चित्रकूटस्य संज्ञां
नत्वा पादारविन्दद्वयमपि जनकस्यात्मजाया हनूमान् ।
पाणिभ्यामंघ्रियुग्मं पुनरुदधितटे मन्त्रयित्वाब्धिगर्भे-
णोर्व्यामुत्पत्य मध्ये तदुरुभुजबलाडम्बरेणाजगाम ॥ ३४ ॥

ततो मरुच्चुम्बितचारुकेसरः प्रसन्नताराधिपमण्डलाग्रणीः ।
वियुक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितः समागतः श्रीहनुमान्वसन्तवत् ॥३५॥

(सीतापतिं ससंभ्रममालिङ्गितुमुद्यतं दृष्ट्वा) देव-

पीतो नाम्बुनिधिर्न कोणपपुरी निष्पिष्य चूर्णीकृता
नानीतानि शिरांसि राक्षसपतेर्नानायि सीता मया ।

जिस समय कि मैनासिलका तिलक मेरे कपोलस्थलमें हाथके रखनेसे बिसनगया था उस समयकी पहिचानको याद करो, हे पवनकुमार ! एक यहभी मेरी निशानी लेकर तुम जाओ, और कहना कि हे रामचन्द्रजी ! आजसे लेकर एक महीनेतक मैं और जीवित हूँ ॥ ३३ ॥

(यह तीसरी पहिचान है ।)

हनुमान् इसके अनन्तर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्जी बडे यत्नसे चूडामणिको लेकर चित्रकूटकी पहिचानको स्मरण करके और महारानी जनकदुलारीके दोनों चरण-कमलोंको प्रणाम करके दोनों हाथोंसे सीताके चरणोंको छूकर फिर समुद्रके तटपर आ विचार करके पृथ्वीसे ऊर्मिमाली समुद्रका उल्लंघन कर लम्बी चौडी भुजाओंके बलसे आकाशमार्गमें होकर आगये ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् जिनके विशुद्ध केसरको पवन चुंबन कर रहा है निर्मल चन्द्रमण्डलके आगे चलनेवाले और वियोगी रामचन्द्रकी कातर दृष्टिसे देखे हुए श्रीहनुमान्जी वसन्त ऋतुकी समान आ पहुँचे ॥ ३५ ॥

(सीतापति रामचन्द्रको अचंभेके साथ आलिंगन करनेके लिये उद्यत देखकर) हे देव ! न मैंने समुद्रका पान किया, न मैंने राक्षसकी लंकापुरीको पीसकर चूर्ण २

आश्लेषार्पणपारितोषिकमहं नार्हामि वार्ताहरो
जल्पन्नित्यनिलात्मजः स जयति व्रीडाजडो राघवे ॥ ३६ ॥

रामः–(सविकल्पं विधातारमुपलम्भते) क्रूरकर्मा विधाता किं विधास्यतीति ॥

हनूमान्–देव !
कुत्रायोध्या क्व रामो दशरथवचनाद्दण्डकारण्यमागा
त्क्वोऽसौ मारीचनामा कनकमयमृगः कुत्र सीतापहारः ।
सुग्रीवे राममैत्री क्व जनकतनयान्वेषणे प्रेषितोऽहं
योऽर्थोऽसंभावनीयस्तमपि घटयति क्रूरकर्मा विधाता ॥ ३७ ॥

रामः–हे वीर ! विदीर्यमाणहृदयद्वारेण प्राणा लोकान्तरं गन्तुमिच्छन्ति किमिति तूर्णं चन्द्रवदना नावेदयसि ।

किया, राक्षसराज ! रावणके शिरभी मैं नहीं लाया हूँ, और न सीताजीहीको लाया हूँ इस कारणसे एक संदेशमात्र लानेवाला मैं आलिंगनरूप पारितोषिकके योग्य नहीं हो सकता, इस प्रकार कहते हुए और रामचन्द्रजीके सन्मुख लज्जासे नम्र हुए हनुमान्जी जयको प्राप्त हो रहे हैं ॥ ३६ ॥

रामचन्द्र-(द्विविधाके साथ प्रारब्धको उलाहना देते हैं)। नहीं मालूम यह क्रूर कर्मा विधाता क्या करैगा ॥

हनुमान्–स्वामिन् ! कहां अयोध्यापुरी ? और कहां राम ? कहां राजा दशरथके वाक्योंसे आपका दण्डकवनमें आना ? और कहां इस मारीच नाम राक्षसका सोनेका मृग बनना ? कहां सीताका हरण ? और कहां सुग्रीवकी आपके साथ मित्रता ? अथच कहां जानकीकी खोजमें मेरा जाना ? जो काम होना असम्भवसा था क्रूरकर्मा ब्रह्मा उसकोभी कर रहा है, (अर्थात् जिस ब्रह्माने यह सब कार्य किये हैं वही अब जानकीजीकोभी मिला देगा) ॥ ३७ ॥

रामचन्द्रजी–हे वीर ! ये प्राण विदीर्ण हुए हृदयरूपी द्वारसे परलोकको जाना चाहते हैं सो क्यों नहीं शीघ्र चन्द्रवदनी सीताकी कुशल सुनाते हो ? ॥

हनूमान्-(सत्वरम्)

हा राम जगदानन्द किमिदं शिवमस्तु ते ।
तव प्राणगतिद्वारस्यार्गलेयं करे मम ॥ ३८ ॥

(इति जानकीशिरोरत्नं रामाय प्रयच्छति ।)

तथा च-

मनःशिलायास्तिलकं स्मर गण्डस्थले त्वया ।
संमृष्टं जानकीवक्षःस्पर्शात्काणीकृतं खगम् ॥ ३९ ॥

रामः-(अभिज्ञानत्रयमासाद्य) साधु मारुते साधु । अये प्रियायाः कुशलमस्ति ।

आञ्जनेयः-

कार्श्यं चेत्प्रतिपत्कला हिमनिधेः स्थूलाथ चेत्पाण्डिमा
नीला एव मृणालिका यदि घना बाष्पाः कियान्वारिधिः ।
संतापो यदि शीतलो हुतवहस्तस्याः कियद्वर्ण्यते
राम त्वत्स्मृतिमात्रमेव हृदये लावण्यशेषं वपुः ॥ ४० ॥

हनुमान्-(जल्दीसे) हे जगत्के आनन्द देनेवाले राम ! आपका कल्याण हो ! आप ऐसा क्या कह रहे हैं ? आपके प्राणोंके जानेके द्वारको बन्द करनेके लिये मूसले (डँडले) की समान यह (चूडामणि) मेरे हाथमें है ॥ ३८ ॥

(ऐसा कह जानकीकी चूडामणि रामचन्द्रजीको देते हैं)

(औरभी) स्मरण करिये कि जानकीजीके गण्डस्थलमें लगा हुआ मैनसिलके तिलकको आपने बिगाडा था, और श्रीजानकीजीके वक्षःस्थलको स्पर्श करनेके अपराधमें आपने कौवेको काना किया था ॥ ३९ ॥

रामचन्द्रजी-(तीन चिह्नोंको लेकर) धन्य ! पवनकुमार धन्य ! प्यारीकी है तो कुशल ? ॥

हनूमान्-हे भगवन् ! श्रीजानकीजीकी दुर्बलताके सामने प्रतिपद् (पडवा) का चन्द्रमाभी उनसे बडा मालूम होता है, उनके बडे भारी अश्रुप्रवाहके सामने समुद्रभी कुछ नहीं । और संतापाग्निको देखनेसे तो अग्निभी ठंडी प्रतीत होती है । हे नाथ ! मैं जानकीकी किस २ दशाका वर्णन करूँ ? हे भगवन् ! हरघडी आपका स्मरण करनेसे केवल उनके एक हृदयमेंही लावण्यता (खूबसूरती) है ॥ ४० ॥

रामः—मारुते का कथा।

हनुमान्—भोः प्रभो—

का शृङ्गारकथा कुतूहलकथा गीतादिविद्याकथा
माद्यत्कुम्भिकथा तुरङ्गमकथा कोदण्डदीक्षाकथा।
एकैवास्ति मिथः पलायनकथा त्वद्भीतरक्षःपते-
र्देव श्रीरघुनाथ तस्य नगरे स्वप्नेऽपि नान्या कथा॥ ४१॥

रामः—

त्रिदशैरपि दुर्धर्षा लंका नाम महापुरी।
कथं वीर त्वया दग्धा विद्यमाने दशानने॥ ४२॥

हनुमान्—

निःश्वासेनैव सीताया राजन्कोपानलेन ते।
दग्धपूर्वा तु सा लंका निमित्तमभवत्कपिः॥ ४३॥
शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लंघितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥ ४४॥

रामचन्द्रजी—हनुमान्! लंकाकी क्या २ बातें हैं?॥

हनुमान्जी—हे भगवन्! न वहां शृंगारकी बातें हैं, न खेलकी बातें हैं, न गाने बजानेकी विद्याकी बातें हैं, न मतवाले हाथियोंकी चर्चा है, और न घोडे तथा धनुषविद्याके सिखानेकी कथा है। हे भगवन्! राक्षसपति रावणकी पुरीमें आजकल केवल एक आपके भयसे भागनेकी चर्चा है। वहां तो स्वप्नमेंभी कोई दूसरी बात नहीं है॥ ४१॥

रामचन्द्र—हे वीर! देवताओंसेभी अजेय लंकापुरीको दशानन रावणके विद्यमान रहते हुएभी तुमने कैसे भस्म कर डाला?॥ ४२॥

हनूमान्—हे भगवन्! सीताजीके श्वासोंसे और आपके क्रोधरूपी अग्निसे वह लंका पहिलेही भस्म होचुकी थी, मैं बन्दर तो उसमें निमित्तमात्रही होगया॥ ४३॥

एक डालीसे कूदकर दूसरी डालीपर जा बैठनाही वानरका पराक्रम है और यह जो मैंने समुद्रको लांघ लिया हे प्रभो! यह तो आपकीही प्रभुता थी॥ ४४॥

अन्तराले लंकायां सरमा नाम राक्षसी धर्मिणी जानकीं वाचमूचे-

बिभेमि सखि संवीक्ष्य भ्रमरीभूतकीटकम् ।
तद्ध्यानादागते पुंस्त्वे तेन सार्धं कुतो रतिः ॥ ४५ ॥
मा कुरुष्वात्र संदेहं रामे दशरथात्मजे ।
त्वद्ध्यानादागते स्त्रीत्वे विपरीतास्तु ते रतिः ॥ ४६ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके हनुमद्विजयो नाम षष्ठोऽङ्कः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽङ्कः ।

रामदूतेनोक्तः सुग्रीवः-

कपिनृपतिरपास्य प्रेयसीं प्रेमभिन्नः
किमिति जनकपुत्रीरामयोः कार्यमुच्चैः ।
गतिरपि हरिसूनोर्विस्मृता राज्यगर्वा-
दिति रघुजनवाक्यादागतः सैन्ययुक्तः ॥ १ ॥

इसी बीचमें लंकामें धर्मव्रतको धारण करनेवाली सरमा नाम राक्षसी सीताजीसे बोली ॥

हे सखि ! भ्रमरके ध्यानमात्रसे भ्रमर बने हुए कीटको देखकर मुझे डर लगता है, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानसे तुममेंभी पुरुषपना आजानेसे उनके साथ फिर तुम्हारा प्रेम कैसे होगा ॥ ४५ ॥

[फिर कहने लगी] इसमें कुछ सन्देह मत करो कि दशरथकुमार रामचन्द्रजीमें तुम्हारा ध्यान करनेके कारण स्त्रीपना आजानेपर तुम्हारी प्रीति उलटी हो जायगी (अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीमें स्त्रीपना और तुममें पुरुषपना आजानेपरभी प्रीति बनी रहैगी) ॥ ४६ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके हनुमद्विजयो नाम षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

हनुमान्जी-सुग्रीवसे कहते हैं स्त्रीके प्रेममें समय बितानेवाले वानरराज सुग्रीवसे जब रामदूत हनूमान्जीने कहा कि राज मिलनेके घमण्डमें तुम वालीकी गतिको भूल गये और वह दिन भूल गये कि स्त्रीभी छिन गई थी, और दुखके २ फिरते थे तब

अथ विजयदशम्यामाश्विने शुक्लपक्षे
दशमुखनिधनाय प्रस्थितो रामचन्द्रः ।
द्विरदविधुमहाब्जैर्यूथनाथैस्तथान्यैः
कपिभिरपरिमाणैर्व्याप्तभूदिक्खचक्रः ॥ २ ॥

हनूमान्-(रामं प्रति)

नृपतिमुकुटरत्न त्वत्प्रयाणप्रशस्ति
प्लवगबलनिमज्जद्भूभराक्रान्तदेहः ।
लिखति दशनटंकैरुत्पतद्भिः पतद्भि-
र्जरठकमठभर्तुः खर्परे सर्पराजः ॥ ३ ॥

श्वासोर्मिप्रतिसन्धिरुन्धितगलप्रच्छिन्नहारावली
रत्नैरप्यदयालुभिः कृतफणाप्राग्भारभङ्गक्रमः ।
श्रोत्राकाशनिरन्तरालमिलितस्तब्धैः शिरोभिर्भुवं
धत्ते वानरवीरविक्रमभराभुग्नो भुजङ्गाधिपः ॥ ४ ॥

कामाभिलाषाके पूर्ण हुए विनाही अपनी प्रिया रुमाको त्यागकर सेनासहित सुग्रीव रामचन्द्रके पास आये ॥ १ ॥

इसके उपरान्त आश्विन शुक्लपक्षमें विजय मुहूर्त्तसे युक्त (विजया) दशमीको रामचन्द्रजीने रावणके वध करनेके लिये यात्रा की। उस समय १८ महापद्म सेनापति तथा और असंख्य वानरोंसे दिशा और आकाशमण्डल भरगया था ॥ २ ॥

हनूमान्-(रामचन्द्रजीसे) हे राजाओंके शिरमौर ! जिनका देह वानरोंके बलसे नीचेको धसकती हुई भूमिके भारसे आक्रान्त हो रहा है ऐसे शेषजी बूढे कच्छपराजकी पीठपर वानरोंके उछलनेपर ऊपरको उठते हुए और वानरोंके पडनेपर नीचेको बैठते हुए दांतोंरूपी कीलोंसे मानो आपकी चढाईकी प्रशंसा लिख रहे हैं ॥ ३ ॥

सेनाके बोझसे पुनः पुनः श्वास लेनेके कारण रुके हुए कण्ठमेंसे जिनके हारोंकी लडियोंके रत्न टूट गये हैं ऐसे आपसकी रगडके दुःखको न जाननेवाले, वानरोंके बलके भारसे टेढे हुए, और फणोंके व्यग्र होनेसे मुडते हुए तथा कानोंके छेद न होनेसे परस्पर सटे हुए सकल शिरोंके द्वारा शेषजीने कठिनतासे पृथ्वीको धारण किया है ॥ ४ ॥

रामः—अये मरुत्तनय

कूर्मं क्लेशयितुं दिशः स्थगयितुं भेत्तुं धरित्रीधरा-
न्सिन्धुं धूलिभरेण कर्दमयितुं तेनैव रोद्धुं नभः ।
नासीरेषु पुरःपुरश्चलबलालापस्य कोलाहला-
त्कर्तुं वीरवरूथिनी मम परं जैत्रं पुनस्त्वद्भुजैः ॥ ५ ॥

भिल्लीभिः—(सहासम्)

नो शस्त्रं नापि शास्त्रं न हि च रथकथा नापि दन्ती न वाजी
नोक्षाणो नापि चोष्ट्रा बत न च शिबिरो नापि राजा जटावान् ।
नो वित्तं नापि वस्त्रं न च नृपरचना काचिदत्रास्ति मातः
प्रातर्द्रष्टुं स्थिताभिर्गिरिवरकुहरेऽभाषि भिल्लीभिरेवम् ॥ ६ ॥

भिल्लीमातरः—

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः ।
तथाप्येको रामः सकलमपि हन्ति प्रतिबलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ ७ ॥

रामचन्द्र—हे पवनकुमार ! अग्रगन्ताओंसभी आगे चलनेवाली यह मेरी वीर वानरोंकी सेना बातचीतके कोलाहलसेही कच्छपराजको क्लेश देनेको, दिशाओंको व्याप्त करनेको, पहाडोंको तोडनेको, धूलिके समूहसे समुद्रको पंकिल (किचौंधा) कर देनेको और उसी धूलिसे आकाशके रोकने और जय पानेको समर्थ है, फिर तुम्हारे भुजबलका तो कहनाही क्या ? ॥ ५ ॥

भीलनियोंने—(हँसकर कहा) हे मातः ! इनके पास न कोई शस्त्र हैं, न शास्त्रही है, और न कुछ रथकीही बात है, हाथी घोडे बैल और ऊँटभी (इनके पास) नहीं है । दुःख है कि इनके पास तम्बूभी नहीं है, और न यह राजाही हैं, न इनपै धन है, और वस्त्रभी कुछ नहीं हैं, और न कुछ राजाओंकीसी रचना (ठाट) ही है, ऐसे प्रातःकालके समय पहाडोंकी गुफाओंमें देखनेको बैठी हुई भीलनियोंने अपनी माताओंसे कहा ॥ ६ ॥

भीलिनिकी माताओंने कहा—यह अवश्य लंका जीतेंगे समुद्रको पैरोंसेही तर जायँगे यद्यपि इनका विपक्षी रावणसा बली है, और इनकी सहायता करनेवाले

अत्रान्तरे तत्र लङ्कायां मन्त्रणायोपविष्टो मन्त्रिभिः
प्रोत्साहितो लंकाभटानुत्कण्ठं बभाषे बिभीषणः–
सुवर्णपुंखाः सुभटाः सुतीक्ष्णा वज्रोपमा वायुमतः प्रवेगाः।
यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥८॥
बिभीषणः–(रावणं प्रत्याह)
जातिं मनाय मानुषीमभिमुखो दृष्टस्त्वया हैहयः
स्मृत्वा वालिभुजौ च सांप्रतमवज्ञातुं न ते वानराः।
तत्पौलस्त्यमहाग्निहोत्रिणमहं त्वामेवमभ्यर्थये
सीतामर्पय मुञ्च च क्रतुभुजः काराकुटुम्बीकृतान् ॥ ९ ॥
त्यजस्व कोपं कुलकीर्तिनाशनं भजस्व धर्मं कुलकीर्तिवर्धनम्।
प्रसीद जीवेम सबान्धवा वयं प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥१०॥

बन्दर हैं, तोभी ये रामचन्द्रजी अकेलेही शत्रुपक्षके समस्त बलका नाश कर देंगे, क्योंकि बडे मनुष्योंकी क्रियाकी सिद्धि धैर्य वा बलसे रहती है, कुछ (हाथी घोडे आदि) सामानमें नहीं होती ॥ ७ ॥

इसी बीचमें सम्मति करनेको बैठे हुए मंत्रियोंसे उत्साहित किये हुए बिभीषण लंकाके योधाओंसे उत्कण्ठाके साथ बोले–

सोनेके पुंखोंवाले, परम बली, बडे तीखे, वज्रकी समान, दृढ, पवन और मनकी सदृश परम वेगवाले (रामके) बाण जबतक शिरोंको अपने वशमें नहीं करते हैं तबतक आप दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको जानकी दे दीजिये ॥ ८ ॥

बिभीषणने–(रावणसे कहा) हे भाई! मनुष्यजातिका आदर करो, तुमने अपना सामने करनेवाले सहस्रार्जुनको देखाही था, और वालीकी भुजाओंके बलको स्मरण करके इस समय वानरोंका अपमानभी नहीं करना चाहिये, इस कारण हे पुलस्त्यके कुलदीपक! रामकी क्रोधसे प्रज्वलित अग्निमें हविके समान सम्पूर्ण राक्षसोंको हवन करते हुए आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि सीता श्रीरामजीको समर्पण कर दो और जिनको कारागारका कुटुम्बी बनारक्खा है, उन यज्ञभोक्ता देवताओंको छोडदो ॥ ९ ॥

हे भ्रातः! कुल और कीर्तिका नाश करनेवाले इस क्रोधको त्याग दो, तथा कुल और कीर्तिको बढानेवाले अपने धर्मको धारण करो ऐसा करके हमारे ऊपर

रावणः-(सक्रोधम्)

जानामि सीतां जनकप्रसूतां जानामि रामं मधुसूदनं च ।
वधं च जानामि निजं दशास्यस्तथापि सीतां न समर्पयामि ११॥

(इति वामचरणेन विभीषणं ताडयामास)

विभीषणः-

ततश्चतुर्भिः सह मन्त्रिपुत्रैरुत्सृज्य रक्षःकुलधूमकेतुम् ।
लङ्कामहातंक इवाम्बरेण विभीषणो राघवमाजगाम ॥ १२ ॥

आगते विभीषणे परस्परं वानराः-

अद्यैवास्य विभीषणस्य शरणापन्नस्य मूर्ध्ना नते-
रानृण्याय ददात्ययं रघुपतिर्लंकाधिपत्यश्रियम् ।
एतस्यैव भुजाविह प्रतिभुवौ सुग्रीवराज्यार्पणे
त्रैलोक्यप्रथिमानसत्यचरिताः सर्वे वयं साक्षिणः ॥ १३ ॥

अनुग्रह करो, जिससे कि हम कुटुम्बियोंके साथ जीवित बने रहैं श्रीरामचन्द्रजीके जानकी देदो ॥ १० ॥

रावण-(क्रोधके साथ) जनकके कुलमें उत्पन्न हुई जानकीको मैं जानता हूँ और रामकोभी जानता हूँ कि वे मधुराक्षसका नाश करनेवाले अर्थात् विष्णुका अवतार हैं तथा अपनी मौतकोभी जानता हूँ (परन्तु एक मुखवालेकोभी अपनी बातकी हठ होती है) मैं तो दश मुखवाला हूँ इस कारण सीता नहीं दूंगा ॥११॥ (ऐसा कहकर बाँये पैरसे बिभीषणको एक लात लगाई ॥)

विभीषण-इसके अनन्तर चार मंत्रिकुमारोंके साथ राक्षसकुलके धूमकेतुकी समान रावणको त्याग लंकाके परम भयकी तुल्य विभीषण आकाशमार्गसे श्रीरामचन्द्रजीके समीप चले आये ॥ १२ ॥

(बिभीषणके आनेपर वानर आपसमें कहनेलगे कि) शरणमें प्राप्त हुए इस बिभीषणके माथा नमाकर प्रणाम करने पर यह श्रीरामजी इस बिभीषणको प्रणामके बदलेमें लंकाके प्रभुत्वकी लक्ष्मी देते हैं इन्हीं रामचन्द्रकी भुजाएं सुग्रीवको राज्य देनेमें उदारता दिखा चुकी हैं त्रिलोकीके सुन्दर चरित्रोंमें चित्त देनेवाले हम सब वानर इसके साक्षी हैं (अर्थात् जैसे बालीको मार सुग्रीवको राज्य दिया ऐसेही रावणको मारकर बिभीषणको राज्य देंगे) ॥ १३ ॥

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शंकरात् ।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ॥ १४ ॥

ततो रामेण—

अथ दशरथपुत्रे तत्र सौमित्रिमित्रेऽ-
प्युदगुदधितटान्ते गर्भदर्भावकीर्णे ।
अहमिहह निविष्टे नावतोऽग्रेऽतिरोषा-
द्यदि जलधिरनेनाप्यात्तमाग्नेयमस्त्रम् ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्रे दशवक्त्रहानौ कृतोद्यमे क्रव्यभुजः समस्ताः ।
मित्राण्यमन्यन्त मृगं कपिं च तपोधनं गाढतरं वनं च ॥ १६ ॥

समुद्रः—(रामं प्रति)

अस्मद्गोत्रे भविष्यद्दशरथनृपतेरश्वमेधेषु सर्पिः-
संपातोत्तापलोलज्ज्वलदनलकलाव्याकुलं कूर्मराजम् ।
ज्ञात्वा रोदःपुटं वा ननु तव सगरः प्राग्भवो भाविवेत्ता
नेता सप्ताम्बुधीनामपि सविधमवाग्वान्तरश्मिः स्रवन्तीम् १७॥

जो विभूति (ऐश्वर्य) रावणको अपने शिर काटकर चढाने पर शिवजीसे मिली थी वही विभूति श्रीरामचन्द्रजीका दर्शनमात्र करनेसे विभीषणको मिलगई ॥ १४ ॥

फिर रामचन्द्रजीने—इसके उपरान्त अपने भ्राता लक्ष्मणके साथ मुझ रामके यहाँ उत्तर तटपर बिछे हुए कुशके आसनपर बैठने परभी मेरे सामने समुद्र नहीं आया, ऐसा विचार कर रामचन्द्रजीने बडे क्रोधमें भरकर अग्निबाण ग्रहण किया ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके दशग्रीव रावणके दशों मस्तकोंके काटनेका उद्योग करने पर समस्त मांसभक्षी जीवोंने और मृग (मारीच) वानर (हनूमान्) तपस्वी (श्रवणके पिता यज्ञदत्त) और बडे भारी वनको अपना विशेष मित्र माना (अर्थात् अधिक राक्षसोंके मरनेसे बहुत मांस मिलैगा ऐसा मानकर मांसभक्षी परम प्रसन्न हुए)॥ १६॥

समुद्र—(श्रीरामचन्द्रजीसे) हमारे वंशमें उत्पन्न होनेवाले राजा दशरथके किये अश्वमेधयज्ञमें निरन्तर अग्निके विषे घृतको आहुति छोडनेसे अत्यन्त प्रदीप्त हुई अग्निकी लपटोंसे कच्छपराज घबडा जायँगे, एवं स्वर्ग और भूमि व्याकुल होजायँगी ऐसा विचारकर भावीके जाननेवाले तुम्हारे पूर्वपुरुष राजा सगर बडे विधानसे सात समुद्रोंके नीचे जो लहरें उनके सोतोंवाली गंगाजीको पहलेही ले आये थे और वही मेरी उत्पत्तिके कारण हैं ॥ १७ ॥

रामः–(सरोषम्)

चापमानय सौमित्रे राघवेऽधिज्यधन्वनि ।
समुद्रं शोषयिष्यामि पदा गच्छन्तु वानराः ॥ १८ ॥

ततः प्राञ्जलिपुटोपस्थितस्य समुद्रस्याज्ञया नलेन निबध्यमाने सेतौ तरतः प्रस्तरानवलोक्याह हनूमान्–

ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परांस्ते प्रस्तरा दुस्तरे
वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान्सन्तारयन्तेऽपि च ।
नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते ॥ १९ ॥

कपेश्च सेनाप्लवगैः पुरोगैः पाथोमयं भूवलयं व्यलोकि ।
तत्पृष्ठगैः पङ्कमयं तदान्यैरासीदिहाम्भोनिधिरित्यवादि ॥ २० ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके सेतुबन्धनं नाम सप्तमोऽङ्कः ॥ ७ ॥

रामचन्द्र (क्रोधमें होकर) हे लक्ष्मण ! धनुष लाओ, मैं धनुषको चढाकर अभी समुद्रको सुखा दूँगा, फिर सब वानर पैदलही पार होजायँगे ॥ १८ ॥

तब हाथ जोडकर खडे हुए समुद्रकी आज्ञासे नल वानरके द्वारा बांधे हुए पुलमें तैरते हुए पत्थरोंको देखकर हनूमान्जी बोले ।

हे वीर ! जो स्वयं डूब जाते हैं, तथा औरोंकोभी नीचे बिठा देते हैं वेही पत्थर इस कठिनतासे तरने योग्य सागरमें तर रहे हैं और वानरयोधाओंकोभी तार रहे हैं सो यह न पत्थरोंकी शक्ति है, न समुद्रकाही गुण है और न यह कुछ इन वानरोंकीही महिमा है, किन्तु यह एक श्रीरामचन्द्रजीमहाराजकी महिमाकाही प्रारम्भ शोभा दे रहा है ॥ १९ ॥

वानरोंकी सेनाके आगे चलनेवाले वीरोंने तो सागरको जलमय देखा, उनके पीछे चलनेवालोंने पंकसे पूर्ण देखा, और उनकेभी पीछे चलनेवालोंने तो यह अनुमान किया कि यहां पहिले कभी समुद्र था । अर्थात् वानरोंके चलनेसे इतनी धूल उडकर समुद्रमें गिरी कि पीछे २ जानेवालोंको कीचड दीखी, और फिर अधिक धूलिके गिरनेसे ढक गया इस कारण उनके पीछे चलनेवालोंने प्राणीही देखे इसी कारण यहां कभी समुद्र था, ऐसा अनुमान किया ॥ २० ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां सेतुबन्धनं नाम सप्तमोऽङ्कः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽङ्कः ।

रामः सुवेलाद्रितटेऽवतीर्णः समुद्रमुल्लङ्घ्य विकीर्णसैन्यः ।
कृपामुपेत्यारिकुलस्य दूतं सुरेन्द्रनप्तारमथादिदेश ॥ १ ॥

रामः—भो महावीराङ्गद !

अज्ञानादथवाधिपत्यरभसादस्मत्परोक्षे हृता
सीतेयं परिमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद ।
नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥ २ ॥

अङ्गदः—यथाज्ञापयति देवः । (स्वगतम्)

हन्तुर्हन्तास्मि नो चेत्पितुरपि परमोत्पन्नसम्पूर्णकार्यं
स्याद्वै युद्धे वधिष्याम्यखिलकपिभटैरुत्कटो हन्तुमेकः ।
ज्ञात्वा संत्यज्य वैरं गगनमिति समुत्पत्य लंकोद्भटस्य
प्रौढः पट्टाधिरूढः सुरपतिसुतजस्तन्महोत्पातकेतुः ॥ ३ ॥

अपनी समुद्रके पार पहुँच सुवेल पर्वतकी तलैटीमें उतरकर श्रीरामचन्द्रजीने सेनाका पडाव डालदिया, और फिर राक्षसोंके ऊपर कृपाकरके इन्द्रके पोते अङ्गदको दूत बनाकर आज्ञादी ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी—हे महावीर अङ्गद ! तुम जाकर रावणसे यह वचन कहो कि अनजाने वा राज्यके मदसे हमारे पीछे हरी हुई इस जानकीको छोड दे नहीं तो लक्ष्मणके छोडे हुए बाणोंके समूहके प्रहारोंसे जिनमें रक्त छनक आया है ऐसे अपने कण्ठोंसे दिशाओंको छाता हुआ (अर्थात् तेरे रुधिरमें लथडे हुए दशों शीश चारों ओर लुडकते फिरेंगे) तू पुत्रोंसहित यमलोकको जायगा ॥ २ ॥

अङ्गद—जो आज्ञा महाराजकी । (मनही मनमें) यदि इस समय मैं अपने पिताके वैरको स्मरण करके रामचन्द्रको मार डालूं तो बडाही अकाज होगा, और यदि पिताके नाशक रामचन्द्रका हन्ता नहीं होऊँ तो यह उपस्थित पिताका कार्य पूरा हो जायगा (क्योंकि ये रावणको मारेंगेही तो इनकाभी कार्य हो जायगा और पिता वालिकाभी कार्य हो जायगा, क्यों कि रावण दोनोंका शत्रु है, पीछे इनके मारनेसे समस्त कार्योंकी सिद्धि होगी) और इन सब वानरोंके साथ रामका वध करनेको तो मैं अकेलाही बहुत हूं । ऐसा विचार द्वेषको त्याग अङ्गद झट आकाशमेंको

ततः प्रविशत्यञ्जलिबद्धः प्रहस्तः ।
देव रामस्य दूतः शाखामृगो द्वारे ॥
रावणः--प्रवेशय ।
ततः प्रविशति प्रहस्तेन सहाङ्गदः ।
(आकाशे लक्ष्यं बद्धा ।)
रे राक्षसाः कथयत क्व स रावणाख्यो
रत्नं रवीन्दुकुलयोरपहृत्य नष्टः ।
त्रैलोक्यदीपनकरात्रिशिखाकराले
यो रामनामदहने भविता पतङ्गः ॥ ४ ॥
रावणः-(साभ्यसूयम्)
सोऽपि त्वं कमिहावगच्छसि पुरा योऽदाहि लांगूलतो
बद्धो मत्तनयेन हन्त स कथं मिथ्यावदन्नः पुरः ।
किं लङ्कापुरदीपनं तव सुतस्तेनाहतोऽक्षो युधी-
त्युक्तः कोपभयत्रपाभरवशस्तूष्णीमभूद्रावणः ॥ ५ ॥

छलांग मार बडे अहंकारसे रावणका अनिष्ट करनेको धूमकेतु तारेकी समान रावणके स्थानके बाहरी सिंहासनपर जाकर बैठ गये ॥ ३ ॥

तदनन्तर हाथ जोडे हुए प्रहस्त आया । देव ! रामका दूत वानर द्वारपर है ॥

रावण–आने दो ।

तदनन्तर प्रहस्तके साथ अङ्गदजी आते हैं (आकाशकी ओर टकटकीबांधकर)

अरे राक्षसो ! बताओ, वह रावण कहां है, जो सूर्यकुल और चन्द्रकुलकी रत्नरूप सीताको चुराकर भाग आया था, और जो तीनों लोकोंको प्रलय करनेवाले रुद्र भगवान्के त्रिशूलकी समान भयंकर रामनामरूप अग्निमें पतङ्गेकी समान भस्मीभूत होनेवाला है ॥ ४ ॥

रावण–(क्रोधसे) पहिले जिस वानरकी पूँछ जला डाली थी और जिसको मेरे पुत्र मेघनादने (ब्रह्मफांससे) बांध लिया था, क्या तूही वह है ? क्या तू यहां किसीको पहिचानता नहीं ? (अङ्गदने कहा अजी वह तो हनूमान् था और) खेदकी बात है कि वह हमसे झूंठ क्यों बोला कि, मैंने लंका फूंक दी और रावणके पुत्रको मार डाला । क्या उसीने तेरी लंकाको जला दिया था ? और युद्धमें अक्षकुमारको

रावणः-

कस्त्वं वानर रामराजभवने लेख्यार्थसंवाहको
यातः कुत्र पुरा गतः स हनुमान्निर्दग्धलङ्कापुरः ।

अङ्गदः-(साधिक्षेपम्)

बद्धो राक्षससूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः
सव्रीडार्तिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते ॥ ६ ॥
यो युष्माकमदीदहत्पुरमिदं योऽदीदलत्काननं
योऽक्षं वीरममीमरद्गिरिदरीर्योऽबीभरद्राक्षसैः ।
सोऽस्माकं कटके कदाचिदपि नो वीरेषु संभाव्यते
दूतत्वेन इतस्ततः प्रतिदिनं संप्रेष्यते सांप्रतम् ॥ ७ ॥

(अपि च)

यो लङ्कां समदीदहत्तव सुतं रक्षांसि चापीपिष-
द्यः कौशल्यमवीवदज्जनकजामब्धिं तथातीतरत् ।

मार डाला था ? ऐसा कहनेपर (अङ्गदके ऊपर) परम क्रुद्ध (हनूमान्से) भयभीत और (इस बातको लोगोंके सुननेसे) लाजके वशमें हुआ रावण मौन हो गया ॥ ५ ॥

अरे वानर तू कौन है ? क्या तू रामके राजमहलमें चिट्ठी भेजने आदिका काम करता है ? जो पहिलेभी आया था और जिसने लंकापुरीकोभी जलाया था वह हनूमान् कहां गया ? ॥

अङ्गद-(आक्षेपके साथ) राक्षसके पुत्र मेघनादने बांध लिया था, यह सुनकर वानरोंने उसको खूब मारा और धिक्कारा, तब वह लज्जा, दुःख और अपमानको पाकर न जाने कहां चला गया यह कुछ विदित नहीं ॥ ६ ॥

जिसने तुम्हारी इस नगरीको भस्म करडाला तुम्हारे बगीचेको उखाड डाला वीर अक्षको मारा और पर्वतोंकी गुफाओंकी राक्षसोंके मृत शरीरोंसे भर दिया था, वह वानर तो हमारी सेनामें कभी वीरोंकी गिनतीमें माना ही नहीं जाता, निरन्तर केवल दूत बनाकर इधर उधर भेज दिया जाता है ॥ ७ ॥

(औरभी सुन) जिसने लंकाको जलाया, तेरे बेटे अक्ष तथा अन्य राक्षसोंको चूरा २ कर डाला, और कोसलपतिरामको जानकीकी कुशल सुनाई थी, जो समुद्र-

यश्चाराममम्मूमुटत्स हनुमानस्मत्प्रवीरोद्यमे-
दूराक्रामणदौत्य एव न पुनर्योद्धुं समादिश्यते ॥ ८ ॥

रावणः-(सावज्ञम्)

रामः स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः
सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकतया निर्मूलकूलद्रुमः ।
गण्यः कस्य विभीषणः स च रिपोः कारुण्यदैन्यातिथि-
र्लंकातङ्कविटंकपावकपटुर्वध्यो ममैकः कपिः ॥ ९ ॥

कस्त्वं वन्यपतेः सुतो, वनपतिः कः, सार्थिकस्त्वेकदा
यातः सप्तसमुद्रलंघनविधावेकाह्निको, वेद्मि तम् ।
अस्ति स्वास्तिसमन्वितो, रघुवरे रुष्टेऽत्र कः स्वस्तिमा-
न्को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतोचिताम्बुप्रदः ॥ १० ॥

रामः किं कुरुते प्रतीपविजयं कोऽसौ प्रतीपो जितो
वाली सोऽपि च को न वेत्सि किममुं को वेत्ति शाखामृगम् ।

कोभी लाँघकर चला गया था और जिसने तुम्हारे बागको तोड मरोड डाला था, वह वीर हनूमान् इस समय हमारे श्रेष्ठ वीरोंका जमाव होनेपर युद्ध करनेको नहीं भेजा जाता है, किन्तु दूर देशको भेजनेमें और दूतका काम करनेमेंही भेजा जाता है ॥ ८॥

रावण-(तिरस्कारके साथ) रामचन्द्र तो अपनी स्त्रीके वियोगसे ही शरीरको हार बैठा है, लक्ष्मण उस अपने भाईकी चिन्तासे दुर्बल होरहा है, सुग्रीव और अङ्गद परस्पर भेदकी शंकासे नदीके किनारेके वृक्षकी समान जडरहित हो रहे हैं और विभीषणको तो गिनताही कौन है ? क्योंकि वह तो वैरीकी दया और दीनताकाही भिखारी है, (अर्थात् इतनोंमें मुझसे युद्ध करनेको योग्य कोई नहीं) एक लंकानिवासी राक्षसोंको भयकी अग्नि देनेमें चतुर उस हनूमान्नामक वानरकाही मुझको बध करना है ॥ ९ ॥

रावण-तू कौन है ? अङ्गद-वालीका पुत्र । रावण-कौनसा वाली ? अङ्गद-जो एक समय समुद्रको एकही दिनमें लाँघ गया था । रावण-उसको मैं जानता हूँ. वह कुशलसे तो है ? अङ्गद-राजा अनरण्यकी मृत्युके अनन्तर जो तेरे रुधिररूप जलके दाता हैं, उन श्रीरामजीके रुष्ट हो जानेपर कौन कुशलसे रह सकता है ? ॥१०॥

रावण-राम क्या करता है ? अङ्गद-शत्रुओंको जीतते हैं, रावण-उसने कौनसे

आस्तेऽत्रापि तवास्ति विस्मृतिरहो मोहो महानीदृशः
पर्यङ्के निजबालकेलिकृतये बद्धोऽसि येनोपरि ॥ ११ ॥

अङ्गदः-

आदौ वानरशावकः समतरद्दुर्लंघ्यमम्भोनिधिं
दुर्भेद्यान्प्रविवेश दैत्यनिवहान्त्संपेष्य लंकापुरीम्।
क्षिप्त्वा तद्वनरक्षिणो जनकजां दत्त्वा तु भुक्त्वा वनं
हत्वाक्षं प्रदहन्पुरीं च स गतो राम कथं वर्ण्यते ॥ १२ ॥

रावणः-(समाक्षिपति)

भग्नं भस्मभुमापतेरजगवं वाली क्षतः सूक्ष्मत-
स्तालाः सप्त हता हताश्च जलधिर्बद्धश्च बद्ध सः।
आः किं तेन सशैलसागरधराधारोरगेन्द्राङ्गदं
साद्रिं रुद्रमुदस्यतो निजभुजाज्ञानात्यसौ रावणः ॥ १३ ॥

शत्रुको जीता ? अङ्गद-वालीको, रावण-वह वाली कौन है ? अङ्गद-क्या तू उसको नहीं जानता ? रावण-अरे वानरको कौन जानता है ? अङ्गद-ओ हो तू यहभी भूल गया, ऐसा अनजान बनता है कि, जिस वालीने तुझको मेरे खेलनेके लिये पालनेके ऊपर बांध दिया था उसकोभी भूलगया ॥ ११ ॥

अङ्गद-पहिले तो वानरका बच्चाही बडी कठिनतासे तरने योग्य समुद्रको लाँघ गया, अजेय राक्षसोंके समूहोंको चूरा २ करके लंकामें घुस आया, तेरे बगीचेके रखवालोंको मार जानकीजीको मुद्रिका दे, वनके फलोंको खा, और अक्षकुमारका प्राण ले, लंकापुरीको जलाता हुआ लौट गया। तब फिर रामचन्द्रजीका तो मैं वर्णनही क्या करूं ॥ १२ ॥

रावण-(आक्षेप करता है) रामने तो (घुनकर) खाक हुवा शिवका धनुष तोडा और वालीको संकेतसे मारा, टूटे हुए सात ताडके वृक्षोंको नष्ट किया और सागरको बाँधा; ओः यह तो उन्होंने कुछभी नहीं किया, पहाड और समुद्रोंके साथ पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनागका जिनाने बाजूबन्द धारण किया है ऐसे शिवको कैलासके सहित उठानेवाली अपनी भुजाओंको यह रावणही जानता है ॥ १३ ॥

अङ्गदः–(साटोपं स्वामिभक्तिमभिनीय)

कृत्वा कक्षागतं त्वां कपिकुलतिलको वालिनामा बलीया-
न्भ्रान्तः सप्ताब्धितीरे क्षणमिव चरितं स्नानसन्ध्यार्चनं च ।
बाणेनैकेन येनाहत इति पतितो वानरव्रीडयैव
त्यक्त्वा सोऽपि प्रगर्वं द्युमणिसुतपुरं मुञ्च लंकेश गर्वम् ॥ १४ ॥

यत्संदेशहरेण मारुतसुतेनातारि वारां निधिः
क्षिप्रं गोष्पदवन्निजालयमिव प्रावेशि लङ्कापुरी ।
सीतादर्शि समभ्यभाषि च वनं चाभञ्जि रक्षःपतेः
सैन्यं भूर्यवधि व्यदाहि च पुरी रामः कथं वक्ष्यते ॥ १५ ॥

रावणः–(सक्रोधम्)

कुतो हन्तारण्ये कनकमृगमात्रं तृणचरं
कुतो वृक्षाद्वृक्षप्लवननिपुणो वालिनिहतः ।
कुतो वह्निज्वालाजटिलशरसन्धानसुदृढ-
स्त्वहं युद्धोद्योगी गगनमधितिष्ठेन्द्रविजयी ॥ १६ ॥

अङ्गद–(क्रोधसे स्वामीकी भक्तिका परिचय देते हुए) तुझे अपनी बगलमें दबोच-कर जो सातों समुद्रोंके तटोंपर घूमता फिरा और क्षणमात्रमेंही जिसने सन्ध्यावन्दनादि कृत्य कर लिये थे ऐसा वह वानरोंमें बली वालीभी जिन रामके एकही बाणसे ताडित हो वानरोंकी लज्जासेही गिरता हुआ, अभिमानको त्याग यमराजके लोकको सिधार गया इस कारण लंकेश ! तूभी गर्वको त्याग दे ॥ १४ ॥

जिसके दूत हनूमान्ने गौके खुर समान बडी शीघ्रतासे समुद्रको लाँघ लिया और लंकापुरीमें अपने गृहकी तुल्य प्रवेश किया, सीताको देख उनसे बातचीत की, बगीचेका सत्यानाश किया, राक्षसराज रावणकी बहुतसी सेनाको नष्ट किया तथा लंकाको जलाकर भस्म कर डाला तो फिर रामचन्द्रजीका तो कहनाही क्या है ॥ १५ ॥

रावण–(क्रोधसे) घास चरनेवाले सोनेके एक मृगको वनमें मारा तो क्या हुआ ? तथा एक पेडपरसे दूसरे पेडपर कूद फांद करनेमें चतुर वानर वालीका वध किया तो क्या ? अग्निकी शिखाकी समान जटावाले बाण चलानेमें निपुण रामभी क्या है ? इन्द्रविजयी युद्धका उत्साही मैं तो आकाशमें बैठा हूं (अर्थात् देवताओंकोभी मैंने जीत लिया है) ॥ १६ ॥

अङ्गदः-(समदम्)

संधौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशानन ॥
अक्षतो वा क्षतो वापि क्षितिपीठे लुठिष्यसि ॥ १७ ॥
अवेहि मां रावण रामदूतं बाणा यदीयाः खरदूषणैणम् ।
भुक्त्वा तृषार्ता इव शोणिताम्भः पास्यन्ति ते कण्ठघटैः सरन्ध्रैः १८

रावणः-वानराधम ! कटुप्रलापिन् ! पश्य-

मृत्युः पादान्तभृत्यस्तपति दिनकरो मन्दमन्दं ममाग्रेऽ-
प्यष्टौ ते लोकपाला मम भयचकिताः पादरेणुं ववन्दुः ।
दृष्ट्वा तं चन्द्रहासं स्रवति सुरवधूपन्नगीनां च गर्भो
निर्लज्जौ तापसौ तौ कथमिह भवतो वानरान्मेलयित्वा ॥ १९ ॥

अंगदः-(तत्क्षणाविष्कृतक्रोधः कम्पमानः पाणितलेन भूतलं ताडयित्वा दोःस्तम्भास्फालकेलिं नाटयति)

रे रे राक्षसवंशघात समरे नाराचचक्राहतं
रामोत्तुङ्गपतङ्गचापयुगले तेजोभिराडम्बरे ।

अङ्गद-(अहंकारसे) रे दशानन ! मैं रामचन्द्रजीका दूत बनकर आया हूं तू यदि मेल करेगा तब तो विना घावकेही तुझको रामचन्द्रजीके सामने जाकर भूमिपर लोटना होगा और यदि युद्ध करेगा तो घायल होकर भूमिमें लोटेगा ॥ १७ ॥

रे रावण ! तू मुझको उन रामचन्द्रजीका दूत समझ जिनके बाण खरदूषणरूप मृगको भक्षण करके प्यारे हो रहे हैं, सो अब तेरे कण्ठरूप घडोंके छेदोंमेंसे निकले हुए रुधिररूप जलका पान करेंगे ॥ १८ ॥

रावण-अरे नीच वानर ! कटुभाषी ! देख ! मृत्यु मेरा सेवक बनकर पैर दाबता है, सूर्य मेरे यहाँ आकर मन्द २ तपता है, आठों लोकपाल भयसे घबडाकर मेरे चरणोंकी धूलिको प्रणाम करते हैं, मेरी चन्द्रहास तलवारको देखकर देवताओंकी स्त्री और नागोंकी पत्नियोंके गर्भ गिर जाते हैं, तौ फिर निर्लज्ज वह दोनों तपस्वी वानरोंको जोड बटोरके मेरे साम्हने क्या होसक्ते हैं ॥ १९ ॥

अङ्गद-(उसी समय क्रोधको प्रकट कर काँपते हुए अपनी हथेलीसे पृथ्वीपर थपकी दे, दोनों भुजदण्डोंको ठोकते हैं)

रे राक्षसकुलके घातक ! मुझे सूझता है कि श्रीरामचन्द्रजीके परमोत्तम धनुषबा-

मन्ये शैर्षमिदं त्वदीयमखिलं भूमण्डले पातितं
गृध्रैराल्लुठितं शिवाकवलितं काकैः क्षतं यास्यति ॥ २० ॥

रावणः–(सप्रपञ्चम्) रे रे शाखामृग ! त्वामहं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि । उक्तं च–

यथोक्तवादी दूतः स्यान्न स वध्यो महीभुजा ।
क्रूरस्तदीयकोपेन क्वचिद्वैरूप्यमर्हति ॥ २१ ॥

अङ्गदः–(सवैदग्ध्यम्)

परदारापहरणे न श्रुता या दशानन ।
दृष्टा दूतपरित्राणे साधोस्ते धर्मशीलता ॥ २२ ॥

रावणः–(सगर्वम्)

इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारि प्रतीहारकं
चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ संमार्जयन्तौ गृहान् ।
पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद्गृहे नेक्षसे
रक्षोभक्ष्यमनुष्यमत्रवपुषं तं राघवं स्तौषि किम् ॥ २३ ॥

णके तेजसे परिपूर्ण युद्धका आरम्भ होनेपर बाणोंसे कटते हुए तेरे समस्त मस्तक पृथ्वीपर गिरकर लुडकेंगे, जिनको कि लेकर गीध आकाशको उडेंगे, गीदडियें कुतरेंगी तथा कौवे नोचेंगे ॥ २० ॥

रावण–(तिरस्कारसे) रे वानर ! कडुवे वचन बोलते हुएभी तुझको मैं धर्मकी मर्यादासे नहीं मारता हूँ ॥

कहाभी है कि–दूत सत्य बोलनेवाला होता है, इस कारण राजाको योग्य है कि, दूतका वध न करै, यदि दूत क्रूर हो और उसके ऊपर क्रोध आ जाय तो किसी अङ्गमें कुरूप कर देना चाहिये ॥ २१ ॥

अङ्गद–(चतुराईसे) हे दशमुख ! तुम्हारी जो धर्मशीलता परस्त्रीहरण करनेमें नहीं सुनी थी, वह धर्मपरायणता दूतकी रक्षा करनेमें देखी ॥ २२ ॥

रावण–(मदसे) अरे ! क्या तू नहीं देखता है कि–इंद्र मेरा माला बनानेवाला माली है, सूर्य मेरे द्वारपर डचोढीवान् है, चन्द्रमा छत्र धारण करता है, वायु और वरुण मेरे महलोंमें झाडना बुहारना और छिडकाव करते हैं और भोजन बनानेका काम अग्नि करता है इतने परभी दैत्योंके भक्षण करने योग्य केवल मनुष्यशरीरवाले उस रामकी बडाई तू कैसे करता है ॥ २३ ॥

अङ्गदः–(विहस्य)

रे रे रावण हीन दीन कुमते रामोऽपि किं मानुषः
किं गङ्गापि नदी गजः सुरगजोऽप्युच्चैःश्रवाः किं हयः ।
किं रम्भाप्यबला कृतं किमु युगं कामोऽपि धन्वी नु किं
त्रैलोक्यप्रकटप्रतापविभवः किं रे हनूमान्कपिः ॥ २४ ॥

रावणः–(सरोषम्)

कस्त्वं कस्यासि पुत्रः क्व पुनरिह गतः किंनु कृत्यं च कस्मा-
द्विस्पष्टं विष्टपानां त्रिजयिनमपि मां मन्यसे त्वं तृणाय ।
हंहो पौलस्त्यपुत्रस्तव बलमथनस्यांगदोऽहं सुवेला-
त्संप्राप्तो रामदूतो विसृज जडमते जानकीं वा शिरो वा ॥ २५ ॥

रावणः–

धिग्धिगङ्गद मानेन येन ते निहतः पिता ।
निर्माना वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्वमागतः ॥ २६ ॥

अङ्गद–(हँसकर) अरे हीन ! दीन ! विपरीत बुद्धिवाले ! रावण ! क्या रामचन्द्रजी क्या (साधारण) मनुष्य हैं ? क्या गंगाभी नदी है ? क्या ऐरावतभी हाथी है ? क्या उच्चैःश्रवा (कोई सामान्य) घोडा है ? क्या रम्भा अप्सराभी (साधारण) नारी है ? सत्ययुगभी क्या (साधारण) युग है ? क्या कामदेवभी (सामान्य) धनुषधारी है ? और त्रिलोकीमें प्रसिद्ध प्रतापी तथा ऐश्वर्यवाला हनूमान् क्या (साधारणही) वानर है ॥ २४ ॥

रावण–(क्रोधमें भरकर) अरे ! तू कौन है ? और किसका पुत्र है ? जो पहिले यहाँ लंकामें आया था वह कहां है ? यहां तेरा क्या काम है ? मुझ देवताओंके जीतनेव लेकोभी तू तिनुकेके समान कैसे मानता है ? अङ्गद–अरे ! मैं जानता हूँ तू पुलस्त्यके वंशका है, मैं तेरे बलको मथनेवाले वालिका बेटा अङ्गद सुवेल पर्वतसे रामका दूत बनकर आया हूँ, अरे मूढमते ! अब तू या तो जानकीको छोड, नहीं तो अपने मस्तकोंको दे अर्थात् मारा जायगा ॥ २५ ॥

रावण–अरे अङ्गद ! बार २ तुझको धिक्कार है अरे ! जिनने तेरे पिताको अहंकारमें होकर मारा तू उसीका दूत बनकर आया ह यह तेरा वीरताका वर्त्ताव सन्मानके योग्य नहीं है ॥ २६ ॥

अङ्गदः-

युक्तं कृतं तु रामेण येन मे निहतः पिता ।
त्रैलोक्ये शास्तिकृत्याय वर्तते स दुरात्मनाम् ॥ २७ ॥
किं कार्यं वद राघवस्य न च किं बद्धः किमम्भोनिधिः
क्रीडार्थं कपिपोतकैरतरलं जानात्यसौ मां नहि ।
लङ्कानाकनिकायवैरिवसतिं किं वेत्ति वेत्त्येव हु
को लंकाधिपतिर्विभीषण इति प्रख्यातकीर्तिर्भुवि ॥ २८ ॥

रावणः-

बद्धः सेतुर्यदि जलनिधौ वानरैस्तावता किं
नो वल्मीकाः क्षितिधरनिभाः किं क्रियन्ते पिपीलैः ।
दग्धा लंका यदपि कपिना स प्रभावः किलाग्नेः
शौर्याश्चर्यं निजभुजजये किं कृतं रामनाम्ना ॥ २९ ॥

अंगदः-

रामो नाम स एव येन भगिनीनासावसापंकिलः
खड्गस्ते खरदूषणत्रिशिरसां धौतः शिरःशोणितैः ।

अङ्गद-रामचन्द्रजीने जो मेरे पिताका वध किया सो उचितही किया, क्योंकि वे तीनों लोकोंमें दुष्टोंको दण्ड देनेके कार्यके निमित्तही यहां उपस्थित हुए हैं ॥२७॥

रावण-रामचन्द्रका क्या काम है ? अङ्गद-कुछभी नहीं, रावण-तौ फिर समुद्रपर सेतु क्यों बाँधा है ? अङ्गद-वानरोंके बच्चोंने खेलके लिये । रावण-रणमें स्थिर रहनेवाले मुझको क्या वह राम नहीं जानता ? और क्या मुझ देवताओंके वैरीके रहनेकी यह लंकापुरी है इस बातको वह जानता है ? अङ्गद-हाँ जानते हैं । रावण-क्या तुझको यह नहीं मालूम है कि लंकाका राजा कौन है ? अङ्गद-अरे समस्त भूमण्डलपर जिसका यश फैल रहा है, वह विभीषणही लंकाका राजा है ॥ २८ ॥

रावण-यदि वानरोंने समुद्रमें पुल बांधही लिया तो उससे क्या है ? क्या छोटी २ चींटियें पहाडोंकी समान बमई नहीं बना लेती हैं ? और जो बन्दरने लंकाको फूंक दिया था वह तो अग्निका प्रभाव था, उस रामने अपनी भुजाओंकी जीतमें कौनसा वीरताका आश्चर्य किया है ? ॥ २९ ॥

अङ्गद-अरे ! राम वेही हैं जिन्होंने तेरी बहिनकी नाककी चर्बीकी कीचसे सने

तद्वालान्तिनितान्तबद्धवपुषः संमूर्च्छितस्य ध्रुवं
घ्राणं दर्पमिव स्वसुर्विलुठितं रामः कथं विस्मृतः ॥ ३० ॥

रावणः-

परिमितमहिमानं क्षुद्रमेनं समुद्रं
क्षितिधरघटनाभिः कोऽयमुत्तीर्य गर्वः ।
अकलितमहिमानः सन्ति दुष्प्रापपारा
दशवदनभुजास्ते विंशतिः सिन्धुनाथाः ॥ ३१ ॥

अंगदः-

रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुम
प्रागेकं किल कार्त्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीगणै-
रन्यं वक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा ॥ ३२ ॥

अपने खड्गको खर दूषण और त्रिशिराके शिरके रुधिरसे धोया था। और जिन रामचन्द्रने तेरे मूर्तिमान् घमण्डकी समान उनकी स्त्री सीताके समीप खूब डटकर खडी होनेवाली तेरी बहिनकी नाक काट डाली थी, जिसको सुनतेही तुझको निःसन्देह मूर्च्छा आ गई होगी, अरे ! उन रामको तू कैसे भूल गया ? ॥ ३० ॥

रावण-जिसका थोडासा प्रताप है ऐसे इस छोटेसे सागरको पर्वतोंकी शिलाओंका पुल बनाकर उतरे, इतने पर यह क्या घमण्ड ? अरे ! अभी तो जिनका पार नहीं मिल सकता ऐसे अतर्कित प्रभाववाले, समुद्रके रक्षक दशाननके बीस भुजदण्ड विद्यमान हैं ॥ ३१ ॥

अङ्गद-अरे रावण ! न जाने रावण कितने हैं, इन बहुतसे रावणोंको तो हमने सुना है, कहते हैं कि, पहिले एकको तो सहस्रबाहुकी भुजाओंने बांधा था। एकको राजा बलिकी दासियोंने नाचनेपर रोटीके ग्रास दिये थे, और एक तीसरेका वर्णन करते हमको लज्जा आती है, (अर्थात् उसको मेरे पिताने कांखमें दबा रक्खा था और मेरी क्रीडाके निमित्त खाटसे बांध दिया था, तथा मैंने उसको लातोंसे मारा था। उसका नाम लेते इस कारण लज्जा आती है कि अपने पिताकी बडाई करना अनुचित है) सो बता तू इनमेंसेही कोई है या इनसे भिन्न कोई औरही रावण है ॥ ३२ ॥

रावणः-

भ्राता मे कुम्भकर्णः सकलरिपुकुलव्रातसंहारमूर्तिः
पुत्रो मे मेघनादः प्रहसितवदनो येन बद्धः सुरेन्द्रः ।
खड्गो मे चन्द्रहासो रणमुखचपलो राक्षसा मे सहायाः
सोऽहं वै देवशत्रुस्त्रिभुवनविजयी रावणो नाम राजा ॥ ३३ ॥

प्रहस्तः-(सरोषम्)

ख्यातौ नाम कपीन्द्रहैहयपती तस्यावगाढान्तर-
स्थेमानौ दशकन्धरस्य महती स्कन्धप्रतिष्ठा पुनः ।
सद्यःपाटितकण्टकीकसकणाकीर्णां यदंसस्थलीं
स्वेनेभाजिनपल्लवेन झटिति प्रास्फोटयद्धूर्जटिः ॥ ३४ ॥

रावणः-

सर्वैर्यस्य समं समेत्य कठिनां वक्षस्थलीं संयुगे
निर्भग्नं मुखमेव दन्तमुसलैरैरावतस्योन्नतैः ।
हेलोत्क्षिप्तमहीध्रकम्पजनितत्रासाङ्गनालिङ्गन-
प्राप्तानन्दहरप्रसादमुदितश्चिन्त्यः स मेऽन्यो रिपुः ॥ ३५ ॥

रावण-अरे ! सुन समस्त वैरियोंके समूहोंके लिये प्रलयकी तुल्य मूर्तिवाला कुंभकर्ण तो मेरा भ्राता है, जिसने इन्द्रको बांध लिया था वह सदा प्रसन्नमुख रहनेवाला मेघनाद मेरा पुत्र है, संग्राममें फुर्ती दिखानेवाली चन्द्रहासनामक मेरी तलवार है और राक्षस मेरी सहायता करनेवाले हैं, वही मैं निःसन्देह देवताओंका शत्रु और तीनों लोकोंकी विजय करनेवाला रावणनामका राजा हूँ ॥ ३३ ॥

प्रहस्त-(क्रोधके साथ) प्रभूत बलशाली वाली और सहस्रबाहु भलेही कभी हुए होंगे, परन्तु आजकल तो रावणके स्कन्धोंकीही बडी भारी प्रतिष्ठा है । जब कि रावणने क्षणभरमेंही शिवजीके निमित्त अपने शिर काटे थे, उस समय उसकी हड्डियोंके कणोंसे रावणके कन्धे भर गये और उन्हें शिवजी महाराजने अपने आपही मुलायम गजचर्मसे झाडा पोंछा था ॥ ३४ ॥

रावण-जिस समय युद्धमें ऐरावत हस्तीके मूसलकी समान समस्त दांतरूप मूसल एक साथ मेरे कठोर वक्षःस्थलमें आकर लगे तो उनकी आगेकी नोकें टूट गईं और मुझको कुछभी कष्ट न हुआ, और जिस समय मैंने खेलमेंही कैलासपर्वतको

अङ्गदः-

रे रे रावण शंभुशैलमथनप्रख्यातवीर्य्यः कथं
रामं योद्धुमिहेच्छसीदमखिलं चेत्तन्न युक्तं तथा ।
रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा रेखा कृता लङ्घिता
तच्चारेण च लंघितो जलनिधिर्दग्धा हतोऽक्षः पुरी ॥ ३६ ॥

रावणः-

यन्मां त्वं वदसि प्रचूर्णितबलान्हेमाक्षदैत्येश्वरा-
ञ्छेषस्याप्यथवा हिरण्यकशिपोर्भस्माङ्गदस्याङ्गद ।
अन्येषाममरद्विषां बलकथा मद्बाहुसारादलं
रामश्चेद्रिपुहा प्रियापहरणे संधिं विधत्ते कथम् ॥ ३७ ॥

अङ्गदः-

शिरोभिर्मा देवीः शिव इव न ते दास्यति पुनः
प्रबन्धं पश्याब्धेः सरस इव कैलासस्रुभट ।

उठाया था उस समय पर्वतके हिलनेसे भयभीत होकर पार्वती शिवजीको चिपट गई तब उनके आलिंगनसे आनन्द पाकर श्रीमहादेवजी बडेही प्रसन्न हुए । (राम तो मेरे सामने है ही क्या वस्तु ?) कोई और प्रबल शत्रु हो तो (बताओ कि) उसपर मैं विचार करूँ ॥ ३५ ॥

अङ्गद-अरे रावण ! महादेवजीके कैलासको उठानेसे प्रसिद्ध यशवाले दशकण्ठ ! तू इस समय रामचन्द्रजीसे संग्राम करनेकी इच्छा रखता है, यह ठीक नहीं है, राम तो अलग रहै श्रीलक्ष्मणजीने धनुषसे रेखा कर दी थी, क्या तू उसको लाँघ सका था ? और देख उनके दूतनेही समुद्रको उल्लंघन कर अक्षको मारा तथा लंकापुरीको जलाके भस्म कर दिया था ॥ ३६ ॥

रावण-हे अंगद ! मुझको जो नष्टप्रताप बताता है, तो हिरण्याक्ष अथवा और बचे हुए हिरण्यकशिपु भस्माङ्गद दैत्य तथा अन्यभी देवताओंके शत्रु राक्षसोंके बलकी कहानीको मेरी भुजाओंके बलसेही पूर्ण समझ अर्थात्-उन सबका बल मेरी भुजाओंके पराक्रमसे थोडा है और यदि राम शत्रुका वध कर सकता है तो जानकीके हरे जाने पर सन्धि क्यों करता है ? ॥ ३७ ॥

अंगद-हे कैलासके उठानेमें शूर ! तू अपने मस्तकोंसे क्रीडा मत कर, रामच-

हितं तु ब्रूमस्त्वां मम जनकदोर्दण्डविजय-
स्फुरत्कीर्तिस्तम्भस्त्यज कमलबन्धोः कुलवधूम् ॥ ३८ ॥

रावणः—

कस्त्वं वालितनूद्भवो रघुपतेर्दूतः स वालीति कः
को वा वानर राघवः समुचिता ते वालिनो विस्मृतिः ।
त्वां बद्धा चतुरम्बुराशिषु परिभ्राम्यन् मुहूर्तेन यः
सन्ध्यामर्चयति स्म निस्त्रप कथं तातस्त्वया विस्मृतः ॥३९॥
त्वद्दोर्दण्डप्रचण्डप्रतिहननविधिप्रौढबाह्वोः सहस्र-
च्छेदक्रीडाप्रवीणस्थिरपरशुमहागर्वनिर्वापकस्य ।
दूतोऽहं राघवस्य त्वदपघनघृणावासवालाग्रलोम्नः
पुत्रः सुत्रामसूनोः प्लवगबलपतेर्नामतश्चांगदोऽहम् ॥ ४० ॥

रावणः—

यद्भग्नाः किल बालतालतरवो रामेण सार्द्रत्वच-
श्छिन्नं यच्च पुरातनं शिवधनुस्तद्वीर्यमुद्दिश्यते ।

न्द्रजी शिवजीकी समान तेरे शिरोंको लौटाकर नहीं देंगे क्योंकि-सरोवरकी समान समुद्रके सेतुबन्धनकोही देख ले । हे रावण ! तू मेरे पिताके भुजदण्डोंके विजयका चलता फिरता कीर्तिस्तम्भ है, इस कारण मैं तुझसे हितकी बात कहता हूँ कि-सूर्यवंशकी कुलवधू जानकीको छोड दे ॥ ३८ ॥

रावण-तू कौन है ? अङ्गद-वालीका पूत और रामचन्द्रजीका दूत । रावण-रे बन्दर ! वह वाली और राम कौन है ? अङ्गद-तेरा वालीको भूल जाना ठीकही है । अरे ! जिसने तुझको बाँधकर मुहूर्त्तभरमें चारों समुद्रोंपर घूमकर संध्यासमयका पूजन किया था, रे निर्लज्ज ! उस मेरे पिताको तू कैसे भूल गया ? ॥ ३९ ॥

अरे ! तेरे प्रचण्ड भुजदण्डोंके बलके हरनेके काममें अहंकार रखनेवाला सहस्रबाहु अर्जुनकी सहस्रों भुजाओंके काटनेकी क्रीडामें प्रवीण परमधीर परशुरामजीके बडे भारी घमण्डको जिन्होंने शान्त कर दिया ऐसे श्रीरामचन्द्रजीका तो मैं दूत हूँ, और तेरे शरीरपर दया आनेके कारण अपनी पूँछके बालोंके अग्रभागको तेरा विश्रामस्थान बनानेवाले वानर सेनापति इन्द्रकुमार वालिका मैं पुत्र हूं ॥ ४० ॥

रावण-अरे ! रामने जो गीली छालवाले छोटे २ ताडके वृक्ष उखाडडाले और

नासीदेतदनागतं श्रुतिपथं स्वर्लोकधूमध्वजः
पौलस्त्यः करकन्दुकीकृतहरक्रीडाचलो रावणः ॥ ४१ ॥
शूराः श्रोत्रपथेषु नः कति कति प्राञ्चः पदं चक्रिरे
तेषामेव विलंघ्य साम्यसरणिं जागर्ति लंकाभटः।
यद्दोर्मण्डलगाढपीडनवशान्निस्पन्दरक्तच्छटाः
शंकामंकुरयन्ति शंकरगिरेरद्यापि धातुद्रवाः ॥ ४२ ॥
स्वेषूत्कृत्य हुतेषु मूर्धसु जवादग्नेः स्फुटित्वा बहि-
र्व्याकीर्णेष्वलिकेषु दैवलिखितं दृष्ट्वापि रामार्पणम्।
चित्तेनास्खलितेन यस्तदधिकं त्र्यक्षाणमप्रीणय-
त्तस्मै कः प्रथमाय मानिषु महावीराय वैरायते ॥ ४३ ॥
वीरोऽसौ किमु वर्ण्यते दशमुखश्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं
यः पूजार्थसमुत्सुको घटयितुं देवस्य खट्वाङ्गिनः।

जो पुराना शिवजीका धनुष तोडा था, क्या उसी वीरताका वर्णन करता है? अरे यह तो कुछभी नहीं है, क्या यह बात कभी कानोंमें नहीं पहुँची कि देवताओंके लिये अग्निरूप पुलस्त्यके नाती रावणने महादेवके विहार करनेके कैलासपर्वतको अपने हाथोंसे गेंदकी समान उठा लिया था ॥ ४१ ॥

हमारे कानोंमें कितनेही शूरतासे पूजित वीरोंने स्थान पाया है परन्तु वह लंकाका वीर उनकी समान श्रेणीका उल्लंघन कर जाग रहा है, जिसके कि भुजदण्डोंके समूहसे अत्यन्त पीडा पानेके कारण कैलासपर्वतके धातुओंके बहते हुए प्रवाह निकले हुए रक्तकी समान प्रतीत हो अभीतक इस शंकाको उत्पन्न करते हैं कि ये कहींसे रुधिरकी धारें चली आ रही हैं ॥ ४२ ॥

केशोंसे सुशोभित हुए अपने शिरोंको बडी उतावलसे काटकर हवन करनेके पीछे अग्निमेंसे फूटकर बाहर फैलने पर सकल शिरोंमें दैवके लिखे रामार्पण (अर्थात् रामसे काल होगा ऐसा) लिखा हुआ देखकरभी जिसने मनको सावधान करके शिवजीको पूर्वसेभी अधिक सन्तुष्ट किया उस मानियोंमें मुख्य मुख्य महावीर रावणसे कौन वैर कर सकता है? ॥ ४३ ॥

मुंडमालाधारी शिवकी अपने आप काटे हुए अपने शिरोंसे पूजा करनेको उत्कण्ठित हुआ जो दशवदन रावण अपने मस्तकोंको काट लेनेपर उनको पिरोनेके

सूत्रार्थी हरकण्ठसूत्रभुजगव्याकर्षणायोद्यतः
साटोपं प्रमथैः कृतं भ्रुकुटिभिः स्थित्वान्तरे वारितः ॥ ४४ ॥

(अत्रान्तरे प्रविश्य) प्रतीहारः—

ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयतां
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः ।
स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो ।
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः ॥ ४५ ॥

अंगदः—(क्रोधं नाटयति)

स्फूर्जद्दिव्यास्त्रबाहुव्यतिकरविगलत्कंधरैस्तैः शिरोभि-
र्देवो रामः करिष्यत्युचितबलिमयं भूतसंघातशास्ता ।
हन्यात्किं नांगदस्त्वामतिपरुषरुषा तातकक्षावशिष्टः
प्रोद्धृत्योद्धृत्य पादप्रहृतबहुशिरःकंदुकैः क्रीडितोऽस्मि ॥ ४६ ॥

निमित्त सूत्रकी आवश्यकता मान महादेवजीके कण्ठमें सूतकी समान लिपटे हुए सर्पके खींचनेको उद्यत होने लगा, तब नाचते कूदते और भ्रुकुटि मटकाते हुए शिवगणोंने मध्यमें खडे होकर उसे हटा दिया, ऐसे वीर रावणका कोई क्या वर्णन कर सक्ता है ? ॥ ४४ ॥

(इसी मध्यमें द्वारपाल भीतर जाकर) अरे ! ब्रह्मा ! यह वेदपढनेका समय नहीं है मौन होकर बाहर बैठो । रे मूढमते बृहस्पते ! यह इन्द्रकी सभा नहीं है, थोडा बोलो । अरे नारद ! स्तोत्रोंको दूर करो । अरे तुम्बुरु ! कथाकी बातोंकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सीताके मस्तकपरकी सिन्दूरकी रेखारूप भालेसे जिसका हृदय छिदगयाहै ऐसा लंकापति रावण इस समय खिन्न होरहाहै ॥ ४५ ॥

अंगद—(क्रोध करके) अरे रावण ! अतिक्रोधके कारण क्या अंगद तुझको अभी नहीं मारडालता ? अवश्यही तुझको समाप्त करदेता, परन्तु तीन कारणोंसे मैं तुझको क्षमा कररहा हूं. एक तो यह कि मेरे पिताकी बगलसे तू बचाहै दूसरे मैंनेभी ऊपर नीचेको उछालकर बालकपनमें चरणोंसे ताडना कियेहुए तेरे शिररूपी गेंदोंसे क्रीडा की है इस कारण मैं तुझको नहीं मारताहूं यदि कोई कहै कि स्वामीसे द्वेष करनेवालेको तो आवश्यही मारडालना चाहिये तो तीसरा कारण यह हैकि सकल प्राणियोंको

अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः ।
तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः ॥ ४७ ॥
मूर्ध्नामुद्धृत्य कृत्ता विरलगलगलद्रक्तसंभूतधारा-
धौतेशांघ्रिप्रसादोपनतजयजगज्जातमिथ्यामहिम्नाम्।
कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकरपिशुनोत्सर्पिदर्पोद्धराणां
दोष्णां चैषामिदं ते फलमिह नगरीरक्षणे यत्प्रयासः ॥ ४८ ॥
सीतां मुंच भजस्व रामचरणं राज्यं चिराद्भुज्यतां
देवाः सन्तु हविर्भुजः परिभवं मा यातु लंकापुरी ।
नोचेद्वानरवाहिनीपतिमहाचञ्चच्चपेटोत्तरे-
स्तत्तन्मुष्टिभिरंगसंगरगतस्तत्तत्फलं लप्स्यसे ॥ ४९ ॥

शिक्षा देनेका जिनका स्वभाव है ऐसे देव रामचन्द्रजी जिसमें दमकते हुए दिव्य अस्त्र हैं ऐसे अपने भुजदण्डके कोपसे जिनकी कन्धरा कटगई हैं, ऐसे तेरे शिरोंसे दिक्पालोंके लिये उचित बलिदान करेंगे ॥ ४६ ॥

सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस लम्बा एक तिमि नामक मच्छ है, और उसकोभी निगलनेवाला एक तिमिङ्गिल मत्स्य है, और श्रीरामचन्द्रजी तो उसकेभी कालस्वरूप हैं ॥ ४७ ॥

शिरोंको उखाडनेपर कटे और परस्पर मिले हुए गलोंसे निकलती हुई बहुतसी रुधिरकी धाराओंसे धोये हुए शिवजीके चरणोंकी कृपासे जो जय प्राप्त हुई उससे जगत्में मिथ्याही जिनकी महिमा हो गई है ऐसे शिरोंका यह कटनाही फल है, और कैलासको उखाडनेकी कामनाके घमंडको जतानेवाले तथा चारों ओरको फैलानेवाले अभिमानसे प्रचण्ड इन तेरी बीस भुजाओंकाभी यह बोझा उठानाही फल है, इन मस्तकों और भुजाओंसे लंकाकी रक्षा करनेमें परिश्रममात्र है और कुछ फल नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

रे रावण ! श्रीजानकीजीको छोड रामचन्द्रजीके चरणोंकी शरण ले, और चिरकालतक राज्यको भोग, देवता यज्ञमें हविका भक्षण करनेवाले हों तथा इस लंकापुरीका अनादरभी न हो, नहीं तो हनुमान् आदि [illegible]सेनापतियोंके महा चपेटोंके ऊपर मुक्कोंसे घोर संग्राम भूमिमें पहुँचा हुआ तू आजतक की हुई सकल अनीतियोंका फल पा जायगा ॥ ४९ ॥

दृष्टः किं रघुनन्दनो नहि पुरा किं च त्वया न श्रुतोऽ-
रण्ये किं न विलम्बितोऽसि न पुनर्मार्गे स्थितोऽसि क्षणम् ।
तल्लंकेश्वर मुंच मानमखिलं श्रुत्वा वधं वालिनः
सीतामर्पय रक्ष राक्षसकुलं दासत्वमङ्गीकुरु ॥ ५० ॥

(क्षेपकः) रावणः–

मरुत्वद्दम्भोलिक्षणघटितघोरश्वयथुना
निसर्गोदग्रेण प्रसभमुरसा पीतगगनः ।
श्रियं देवद्रीचीं निजभुजवनोद्दामकरिणी-
मयं कुर्वन्वीरः स्मरसि कथमासीद्दशमुखः ॥ ५१ ॥

आस्कन्धादपि कण्ठकाण्डविपिने द्राक् चन्द्रहासासिना
छेत्तुं प्रक्रमिते मयैव झटिति त्रुट्यच्छिरःसन्ततौ ।
अस्मेरं गलिताश्रुगद्गदवचो भग्नभ्रु वा यद्यभू-
द्वक्त्रेष्वेवमपि स्वयं स भगवाँस्तन्मे प्रमाणं शिवः ॥ ५२ ॥

क्या तूने पहिले कभी रामचन्द्रजीको देखा नहीं ? और क्या सुनातकभी नहीं ? वनमें तूने कुछ देर विलम्ब क्यों नहीं किया ? और मार्गमें कहीं तू क्षणभरभी क्यों नहीं ठहरा ? इस कारण हे लंकेश ! तू वालीके वधको सुनकर अपने सब अहंकारको छोडदे, सीताजी रामचन्द्रजीको अर्पण कर राक्षसकुलकी रक्षा कर और रामचन्द्रजीके दासभावको अंगीकार कर ले ॥ ५० ॥

रावण–हे अंगद ! जिस समय देवताओंसे पूजित लक्ष्मीको बलात्कारसे अपने भुजारूपी वनमें मत्त हथिनीकी तुल्य ग्रहण करता हुआ और स्वभावसेही विशाल हृदयके द्वारा आकाशको पीता हुआ मैं चला, उस समय इन्द्रने जो मेरे वज्र मारा तो उससे मेरे वक्षःस्थलमें एक सूजनमात्र हो गई थी ऐसा मैं महापराक्रमी रावण कैसा था, यह तुझको स्मरण है ? ॥ ५१ ॥

शीघ्रही चन्द्रहासनामक खड्ग करके कन्धोंपर्यन्त कण्ठरूप वृक्षोंके गुद्दोंके वनको काटनेके निमित्त मेरे स्वयंही प्रस्तुत होनेपर यदि वह झट कटते हुए शिरोंकी पंक्तिमें मेरा कोईभी मुख हँसीरहित हुवा हो या आँसू गिरे हों, या गद्गद वाणी या टेढी भौं हुई हो, तो इसमें स्वयं वह भगवान् शिवही मेरे साक्षी हैं ॥ ५२ ॥

येऽहंपूर्विकया प्रहारमभजन्मां छिन्धि मां छिन्धि मा
छिन्धीत्युक्तिपराः पुरारिपुरतो लङ्कापतेर्मौलयः ।
ते भूमौ पतिताः पुनर्नवभवानालोक्य मूर्ध्नोऽपर -
न्याचिष्यन्त इमे हि नो वयमिति प्रीत्याट्टहासं व्यधुः ॥ ५३ ॥

मूले पंच ततश्चतुष्टयमिति स्रक्सन्निवेशैः शिरः-
पुष्पैरन्यतमावलोकनमितैरुच्छोणितैरश्चति ।
हस्तस्पर्शवशेन मूर्ध्नि दशमं मूर्धानमालोकय-
ञ्छम्भोरद्भुतसाहसैकरसिकः केन स्तुतो रावणः ॥ ५४ ॥

लंकेन्द्रः समधीरवीरपदवीरम्यो न गम्यो गिरां
तस्मिञ्जुह्वति चन्द्रहासशकलान्मौलीन् पुरारेः पुरः ।
भीत्या मन्दशिखोदयोऽपि दहनस्तैरेव तत्र क्षणं
प्राणाद्यैश्च दिदृक्षया तनुतनुश्वासानिलैर्दीपितः ॥ ५५ ॥

पहिले मुझे काटो, मुझे काटो मुझे काटो इस प्रकार मैं पहिले मैं पहिलेके क्रमसे कटनेको उद्यत हुए मेरे शिर त्रिपुरासुरके नाशकर्त्ता श्रीमहादेवजीके सामने पृथ्वीमें गिरे और फिर नूतन निकलते हुए मस्तकोंको देखकर येही वर मांगेंगे हमें इच्छा नहीं ऐसा विचार कर प्रेमसे अट्टहास करने लगे ॥ ५३ ॥

पांच मूलमें और फिर चार मालामें स्थित उछलते हुए और शिरोंको देखनेके निमित्त नम्रीभूत शिरोंरूप पुष्पोंसे पूजन करनेके समय माथेमें हाथका स्पर्श होनेपर दशवें माथेको देखने लगा ऐसे साहसके एकमात्र रसिक रावणकी स्तुति कौन नहीं करता ॥ ५४ ॥

साधारण धीरोंमें वीरोंकी पदवी प्राप्त करनेकी इच्छावालोंके द्वारा स्पृहणीय इस रावणका केवल वाणीमात्रसे कोई पार नहीं पा सकता महादेवके सन्मुख चन्द्रहास खड्गसे कटे उस रावणके मस्तकोंको देखकर हवन करते समय भयके मारे अग्निकी लपट मन्द पड गई फिर देखनेकी अभिलाषा करनेवाले प्राणादि वायुओंने वहां क्षणमात्रको धीरे २ श्वासकी पवनोंसे उस अग्निको प्रदीप्त किया था ॥ ५५ ॥

अंगदः-(सावज्ञम्)

आस्तां मस्तकहोमविक्रमकथा पौलस्त्य विस्तारिणी
देहं किं न निपातयन्ति दहने वैधव्यभीताः स्त्रियः ।
कैलासोद्धरणेन भारवहनप्रौढिस्त्वयाविष्कृता
तूर्णं वर्णय किं च किंचिदपरं यत्पौरुषस्यास्पदम् ॥ ५६ ॥
दोर्दण्डाहितपौत्रभिक्षुरभवद्यस्मिन्पुलस्त्यो मुनि-
स्तद्बाहोर्वनमच्छिनत्परशुना यो राजबीजान्तकः ।
शौर्यं शौर्यरसाम्बुधेर्भृगुपतेर्ग्रासोऽपि नासीज्जलं
तत्तेजो वडवानलस्य किमसौ लंकापतिः पल्वलम् ॥ ५७ ॥
रे रे राक्षसराज मुंच सहसा देवीमिमां मैथिलीं
मिथ्या किं निजपौरुषस्य घटनाप्रागल्भ्यमारभ्यते ।
एनां पश्यसि किं न किन्नरगणैरुद्गीतदोर्विक्रमां
सेनां वानरभर्तुरुद्भटभुजस्तम्भाढ्यभीमां पुरः ॥ ५८ ॥

अंगद-(तिरस्कारके साथ) रे रावण ! तेरे शिरोंके हवनके विस्तारवाली कहानी है सही; क्या विधवापनके दुःखसे डरी हुई स्त्रियें अपने शरीरोंको अग्निमें भस्म नहीं कर देती हैं ? कैलासको उखाडनेसे तूने भारको उठानेकी प्रौढता प्रगट की, अच्छा अब औरभी जो कुछ तेरे पराक्रमकी कथा हो उसकाभी तू शीघ्रही बखान कर डाल ॥ ५६ ॥

अपने पोतेके भुजदण्डोंको बन्धनसे छुडानेके लिये पुलस्त्य मुनिने जिससे भिक्षा मांगी थी उस सहस्रबाहु अर्जुनकी भुजाओंके बलको राजाओंके जडका नाश करनेवाले परशुरामजीने फरसेसे काट डाला, ऐसे वीररसके समुद्र परशुरामजीका शूरतारूप जल, वडवानलकी समान रामचन्द्रके तेजका एक ग्रासमात्रभी तो नहीं हो सका; फिर छोटेसे सरोवरकी तुल्य तू तो वस्तुही क्या है ? ॥ ५७ ॥

अरे राक्षसराज ! इस जानकीदेवीको तू शीघ्र छोड दे तू वृथाही अपने पुरुषार्थकी बडाई क्यों बखान रहा है ? जिनकी भुजाओंके पराक्रमके गीत बनाकर किन्नर गाया करते हैं ऐसे वानरराज सुग्रीवके योधा वानरोंकी भुजाओंके मुख्यस्तम्भोंसे भयानक इन वानरोंकी सेनाको तू अपने सम्मुख क्या नहीं देख रहा है ? ॥ ५८ ॥

इति लंकाभटमुत्कटवाक्यैरधिक्षिप्य लंकामातंकयन्नंगदो निष्क्रान्तः।

इति श्रीहनुमन्नाटकेऽङ्गदाधिक्षेपणं नामाष्टमोऽङ्कः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽङ्कः।

अथ निजप्रतापप्रचण्डसमरोत्साहपरिपूर्णस्य लंकापतेः—

श्रुत्वा दाशरथिः सुवेलकटके साटोपमर्धं धनु-
ष्टंकारैः परिपूरयन्ति ककुभः प्रोच्छन्ति कौक्षेपकान्।
अभ्यस्यन्ति तथैव चित्रफलकैर्लंकापतेस्तत्पुन-
र्वैदेहीकुचपत्रवल्लिरचनावैधग्ध्यमर्धं कराः ॥ १ ॥

(ततो निजराजमन्दिरशिखरस्थमञ्चमारुह्य रावणः)

लंकायां कृतवानयं हि विकृतिं दग्धाग्रपुच्छः पुरा
कोऽप्येष प्रतिभाति वालिसदृशो नूनं तदीयः सुतः।
श्यामः कामसमाकृतिः शरधनुर्धारी स सीताप्रियः
प्रत्येकं रिपुमीक्षतीति निगदन्मंचस्थितो रावणः ॥ २ ॥

इस प्रकार लंकाके शूर वीर (रावण) को भयानक वचनोंसे ललकारकर और लंकापुरीको भय देके अंगद चले गये ॥

इति हनुमन्नाटके भाषाटीकायामङ्गदाधिक्षेपणं नामाष्टमोङ्कः समाप्तः ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर अपने प्रतापकी प्रचण्डतासे बढे हुए संग्रामके उत्साहसे परिपूरित लंकाधिपति रावणकी आधी अर्थात् दश भुजाएँ रामचन्द्रको सुवेल पर्वतके ऊपर सेनाके पडावके साथ स्थित हुए सुनकर धनुषकी टंकारोंसे दिशाओंको व्याप करने लगीं और शेष दश भुजाएं उसी प्रकार चित्र बनानेके फलकोंके ऊपर जानकी-जीके कुचपत्रोंपर बेलोंकी रचनाका अभ्यास करती रहीं ॥ १ ॥

(फिर रावण अपने राजमहलके शिखरपर बिछे हुए सिंहासनके ऊपर चढकर) पूँछके अग्रभागमें आग लगानेपर इसनेही पहिले लंकाको फूंक डाला था यह कोई वानर वालीकी समान शोभा पा रहा है। यह अवश्यही वालीका पुत्र है, और वह धनुष बाण धारण किये कामदेवकी सदृश जिसकी आकृति वह श्याम शरीर सीताका प्यारा है, इस प्रकार प्रत्येक शत्रुके विषयमें कहता हुआ रावण सिंहासनपर बैठाही देखने लगा ॥ २ ॥

तत्र मन्दोदरी–

दृष्ट्वा राघवमेव राक्षसवनस्वच्छन्ददावानलं
जानक्यां निजवल्लभस्य परमं प्रेमाणमालोक्य च ।
कांक्षन्ती मुहुरात्मपक्षविजयं भंगं च मुग्धा मुहु-
र्धावन्ती मुहुरन्तरालपतिता मन्दोदरी सुन्दरी ॥ ३ ॥

वन्दारुवृन्दारकवृन्दवन्दिमन्दारमालामकरन्दबिन्दून ।
मन्दोदरीयं चरणारविन्दरेणूत्करान्कर्करतामनैषीत् ॥ ४ ॥

मन्दोदरी–(अञ्जलिं बद्ध्वा रावणं वैरिविद्रावणं विज्ञापयंति) देव !

त्वं बाहूद्धतचन्द्रशेखरगिरिर्भ्राता जगद्भक्षकः
पुत्रः शक्रजयीत्यवेत्य रणधीर्नूनं बली वालिजित् ।
तद्राजन्नबला बलादपहृता देयास्य सा जानकी
लंकायां रहसीत्युवाच वचनं मन्दोदरी मन्दिरे ॥ ५ ॥

उस समय मन्दोदरी–भगवान् रामचन्द्रको राक्षसरूप वनके निमित्त स्वच्छन्द अग्निकी समान देखकर और जानकीमें अपने पतिके परम प्रेमकोभी देखकर वारंवार अपनेही पक्षके विजयकी इच्छा करती हुई अनजान मन्दोदरी आनन्दमें भरकर कभी घरमें और कभी रावणके समीप दौडकर जाती २ बीचमेंही गिर गई ॥ ३ ॥

इस मन्दोदरीने प्रणाम करनेवाले देवताओंकी रोकी हुई स्त्रियोंके गलोंकी कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाओंके परागके कण जिनमें लगे हैं ऐसे अपने चरणकमलोंकी रेणुके कणोंको किराकिरा कर दिया ॥ ४ ॥

मन्दोदरी–(हाथ जोडकर शत्रुओंका नाश करनेवाले रावणसे प्रार्थना करती है कि) ! लंकाके एकान्त स्थानमें रावणसे यह वचन कहने लगी कि (हे नाथ महाराज ! यद्यपि तुमने बाहुओंसे चन्द्रशेखर महादेवके कैलासपर्वतको उखाड़ लिया था तुम्हारा भाई कुम्भकर्ण जगत्को भक्षण करनेवाला है, और आपका पुत्र मेघनादभी इन्द्रविजयी है तथापि वालीका जीतनेवाला रामभी संग्राममें बडा धैर्यधारी है, हे नाथ ! ऐसा जानकर बलात्कारसे हरकर लाई हुई अबला जानकी इनको दे देनी चाहिये ॥ ५ ॥

रावणः-(निजभुजाडम्बरं नाटयति)

किं ते भीरु भिया निशाचरपतेर्नासौ रिपुर्मे महान्
यस्याग्रे समरोद्यतस्य न सुरास्तिष्ठन्ति शक्रादयः ।
मद्दोर्दण्डकमंडलोद्धृतधनुः क्षिप्ताः क्षणान्मार्गणाः
प्राणानस्य तपस्विनः सति रणे नेष्यंति पश्याधुना ॥ ६ ॥

मन्दोदरी-(सभयं रावणोदितपद्यार्थमपश्यन्ती भाविना द्वितीयं पद्यार्थमवगम्य) अहो प्राणनाथ ! लंकेश्वर ! किमिति स्वकपोलकल्पितैरमंगलालापैरात्मनो वधं मन्यसे ? शान्तं पापं प्रतिहतममंगलमिति वैचित्र्यमुत्पाद्य

एकः सुग्रीवभृत्यः कपिरखिलवनं पत्तनं चापि दग्ध्वा
यातस्तूष्णीं तदानीं दशमुख भवतः किं कृतं वीरवर्गैः ।
प्राप्तोऽसौ पत्तनांतं सकलकपिबलैर्वार्धिमुल्लङ्घ्य योद्धुं
त्वं सीतां मुंच मुंचेत्यनिशमकथयत्प्रेयसी रावणस्य ॥ ७ ॥

रावण-(अपनी भुजाओंके बलका वखान करता है) अरी डरपोक ! तेरे डरसे क्या है ? जब मैं युद्ध करनेको उद्यत होता हूं तब इन्द्रादिक देवताभी मेरे समक्ष नहीं ठहर सक्ते ऐसे मुझ राक्षसराज रावणका कोई यह बडा भारी शत्रु नहीं है, तू अभी देखना, समर होनेपर मेरे भुजदण्डोंके समूहके द्वारा चढाये हुए धनुषसे छूटनेवाले बाण एक क्षणमेंही इस तपस्वी रामके प्राणोंको ले लेंगे । दूसरा अर्थ-हे डरपोक ! मेरे भयसे क्या है क्योंकि-संग्राममें उद्यत होनेपर जिनके सामने इन्द्रादिक देवताभी स्थित नहीं होते हैं, ऐसे यह पुरुष मेरे बडे भारी वैरी हैं तू देखना रणके होनेपर इन तपस्वियोंके बाहुदण्डोंके समूहसे चढाये हुए धनुषसे छूटे बाण क्षणमात्रमें मेरे प्राणोंको हर लेंगे ॥ ६ ॥

मन्दोदरी भयभीत होकर रावणके कहे श्लोकके अर्थको न समझकर किन्तु होनहारके कारण रावणके नाशरूप श्लोकके दूसरेही अर्थको समझके कहने लगी कि-अहो प्राणनाथ ! लंकेश्वर ! क्यों अपने आपही इस प्रकार अमंगल वाक्योंसे अपना नाश मान रहे हो, पाप शान्तिको प्राप्त हो, विघ्नकी गति रुके. ऐसी विचित्रताको उत्पन्न करके ॥

एक सुग्रीवका सेवक वानरही सारी वाटिकाको उजाड और नगरको जलाकर लौट गया, उस समय हे दशानन ! आपके वीरगणोंने क्या किया कुछभी नहीं, केवल

(मन्दोदरीकथनेन किंचित्सभयो रावणः)

शुकं च सारणं वीरं दूतं प्रस्थाप्य रावणः ।
रामदेवस्य शिबिरं मंत्रं चक्रेऽथ मंत्रिभिः ॥ ८ ॥

तत्र विरूपाक्षनामा मन्त्री–(सहितम्)

देव त्वां प्रति संप्रति प्रतिभटप्रोल्लासनं नो मुदे
देवायं प्रतिपद्यते हितमिदं यस्माद्वयं मंत्रिणः ।
सीतारक्षणदक्षलक्ष्मणधनुर्लेखापि नोल्लंघिता
हेलोल्लंघितवारिधिः कपिकुलैः सार्धं स रामो महान् ॥ ९ ॥
यावद्दाशरथेर्न पश्यसि मुखं यावन्न पाथोनिधिं
बद्धं यावदिमां न पावकवशां लंकां निरस्तालकाम् ।
यावन्नैव निजानुजं सुचरितं यातं कुलाङ्गारतां
तावद्रावण लोकपाल तरसा सीतां प्रयच्छानघाम् ॥ १० ॥

मौन साध ली, और अब तो समस्त वानरोंकी सेनाको लेकर यह राम सागरको उतरकर तुमसे युद्ध करनेके निमित्त नगरके निकटही आ गया इस कारण तुम सीताको छोड दो, छोड दो; इस प्रकार रावणकी प्यारी मन्दोदरीने बार २ कहा ॥ ७ ॥

(मन्दोदरीके कहनेसे कुछ भयभीत हुआ रावण) शुक और सारण नामके दो वीरोंको दूत बनाकर रामचंद्रजीके लश्करमें भेजके मंत्रियोंके साथ संमति करने लगा ॥८॥

उस समय विरूपाक्षनामक मंत्री–(हितके साथ कहने लगा) हे देव ! इस समय शत्रुपक्षको अपने साथ लडाईके निमित्त उकसाना आपको आनन्ददायक नहीं होगा । हमलोग आपके मंत्री–हैं, इस कारण हितकीही कहते हैं । क्योंकि–जब सीताजीकी रक्षा करनेमें चतुर लक्ष्मणजीके धनुषकी रेखाभी आपसे नहीं लांघी गई तो फिर वानरोंके झुंडोंके साथ बातकी बातमेंही समुद्रको उल्लंघन करनेवाले वह रामचन्द्रजी तो बहुतही बडे हैं ॥ ९ ॥

हे रावण ! प्रथम तो जबतक यह लंका भस्म होकर राक्षसियोंसे रहित नहीं हुई थी तबतकही तुमको सीता लौटा देनी चाहिये थी इसके अनन्तरभी समुद्रका पुल बँधनेसे पहिलेही लौटा देनी थी यहभी नहीं हो सका तो अब जबतक तुम दशरथराजकुमार रामचन्द्रजीका मुख नहीं देखते हो और जबतक तुम्हारा विभीषण कुलकी कलंकताको नहीं लेता है हे लोकपाल ! तबतक इस पापरहित जानकीको आप शीघ्रही लौटा दीजियें ॥ १० ॥

रावणः-(साश्चर्यम्)

एते ते मम बाहवः सुरपतेर्दोर्दण्डकण्डूहराः
सोऽहं सर्वजगत्पराभवकरो लंकेश्वरो रावणः ।
सेतुं बद्धमिमं शृणोमि कपिभिः पश्यामि लंकां वृतां
जीवद्भिर्नहि दृश्यते किमथवा किं वा न वा श्रूयते ॥ ११ ॥

विरूपाक्षः-राजन्विषादं मागाः पश्य-

आज्ञा शक्रशिरो[1]मणिप्रणयिनी शस्त्रग्रहाणामपि
भक्तिर्भूतपतौ पिनाकिनी पदं लंकेति दिव्या पुरी ।
संभूतिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरो[2] लभ्यते
स्याच्चेदेष न रावणः क्व नु पुनस्त्वेकत्र[3] सर्वे गुणाः ॥ १२ ॥

रावणः-(धैर्यमवलम्ब्य)

मतिर्विपश्चितां मन्त्री रतिर्मन्त्री विलासिनाम् ।
पराक्रमैकसाराणां मानिनां त्वसिवल्लरी ॥ १३ ॥

रावण-(आश्चर्यमें होकर) यह मेरी भुजाएं इन्द्रके भुजदण्डोंकी खुजलीको मिटानेवाली हैं ऐसा समस्त जगत्का तिरस्कार करनेवाला लंकाका स्वामी मैं रावण बन्दरोंके द्वारा समुद्रके पुलको बांधा हुआ सुनूँ और इस लंकाको घेरी हुई देखूँ-यह जीते जी तो देखा या सुना नहीं जायगा ॥ ११ ॥

विरूपाक्ष-(कहने लगा) हे राजन् ! खिन्न न हूजिये देखिये, आपकी आज्ञाको शस्त्रधारी इन्द्रादिकभी अपने शिरपर मणिकी समान आदरके साथ धारण करते हैं, पिनाकपाणि शिवके चरणोंमें आपकी भक्ति है, लंकासी दिव्य पुरी रहनेका स्थान है, ब्रह्मवंशसे आपकी उत्पत्ति है, ओहो ! ऐसे वरदानभी कोई नहीं पा सकता और यदि किसीमें यह सब गुण हो भी जाँय तो यह रावण नहीं होगा सार यह है कि-यह सब गुण आपके अतिरिक्त और किसीमें नहीं होंगे ॥ १२ ॥

रावण-(धीरज धरकर) विद्वानोंका मंत्री बुद्धि होती है, कामियोंका मंत्री रति होती है, और केवल पराक्रमहीको सार माननेवाले मानी मनुष्योंकी तो तलवाररूप लता ही मंत्री है ॥ १३ ॥

---

१ आज्ञा शक्रशिखामणिप्रणायिनी शास्त्राणि चक्षुर्नवम् । २ उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरो लभ्यते । ३ सर्वत्र सर्वेगुणाः इति च पाठान्तरम् ।

अथ महोदरो नाम मंत्री—

राजन्मुखसुखा वाचो मधुराः कस्य न प्रियाः ।
तव क्षोदक्षमाः किन्तु नैता व्यसनसंगमे ॥ १४ ॥
प्रिया वा मधुरा वाक् च हर्म्येष्वेव विराजते ।
श्रीरक्षणे प्रमाणं तु वाचः सुनयकर्कशाः ॥ १५ ॥
विभवे भोजने दाने तिष्ठन्ति प्रियवादिनः ।
विपत्तौ चागतेऽन्यत्र दृश्यन्ते खलु साधवः ॥ १६ ॥
अग्रे प्रस्तुतनाशानां मूकता परमो गुणः ।
तथापि प्रभुभक्तानां मौखर्यादिदमुच्यते ॥ १७ ॥
यैरेव स्तुतिभिः स्वामी प्राप्यते व्यसनाटवीम् ।
पश्चान्मूकत्वमापन्नैरुद्धर्तुं शक्यते कथम् ॥ १८ ॥
नद्यश्च खलमैत्री च लक्ष्मीश्च नियतिर्द्विषाम् ।
सुकुमाराश्च वनिता राजन्नस्थिरयौवनाः ॥ १९ ॥

इसके उपरान्त महोदरनामक मंत्रीने कहा कि—हे राजन् ! प्रारम्भमेंही अथवा मुखसे कहनेमात्रमें सुख देनेवाली मीठी बातें किसको प्यारी नहीं लगतीं ? परन्तु दुःख आनेपर यह बातें आपके दुःखको दूर नहीं कर सकेंगी ॥ १४ ॥

प्यारी और मीठी बातें तो महलोंमेंही विराजती हैं और लक्ष्मीकी रक्षा करनेमें तो सुन्दर नीतिसे युक्त कठोर वाणीही काम देती है ॥ १५ ॥

प्यारी बातें बनानेवाले केवल ऐश्वर्य, भोजन और दानके समयही समीप रहते हैं, और आपत्ति आनेपर तो वे प्रियवादी लोग अन्यत्र चले जाते हैं और साधुही समीप दीखते हैं ॥ १६ ॥

जिनका विनाशकाल उपस्थित है उनके साम्हने चुप रहनाही परम गुण है, तथापि हम प्रभुभक्त हैं, इस कारण धृष्ट होकर यह कहते हैं, कि ॥ १७ ॥

जो मिथ्या प्रशंसा करनेवाले मंत्री स्वामीको दुःखोंके वनमें डाल देते हैं, और पीछेसे मौन हो बैठते हैं, उन मंत्रियोंसे स्वामीका उद्धार कैसे हो सकता है ? ॥ १८ ॥

हे राजन् ! नदियें, खोटे पुरुषोंकी मित्रता, लक्ष्मी और शत्रुओंका प्रारब्ध तथा कोमलाङ्गी स्त्रियोंका यौवन ये सब सदा स्थिर नहीं रहते हैं ॥ १९ ॥

दत्तोत्साहैरकार्येऽपि चित्तग्रहणकोविदैः ।
सत्य विदग्धैर्भुज्यन्ते नृपाः कर्णान्तषट्पदैः ॥ २० ॥
पद्मिनी कान्तिमापेदे संकोचं च कुमुद्वती ।
न भवन्ति चिरं प्रायः सम्पदो विपदोऽपि वा ॥ २१ ॥

तथा च–

सुरेज्यादिभिराचार्यैर्नीतिशास्त्रं त्रिधा मतम् ।
ऐहिकं चामुष्मिकाख्यमैहिकामुष्मिकं तथा ॥ २२ ॥
ऐहिकामुष्मिकं तत्र शास्त्राणामुत्तमोत्तमम् ।
आमुष्मिकं तूत्तमं स्यादैहिकं चाधमाधमम् ॥ २३ ॥
यज्ज्ञानात्स्वामिनं हत्वा भजन्ते मंत्रिणः श्रियम् ।
विषशस्त्रादिभिः शास्त्रं तदैहिकमिति स्मृतम् ॥ २४ ॥
तुल्यः सूर्यद्विजवधैराज्ञाभंगो महीभुजाम् ।
तद्वधे यद्भवेत्पापं न शेषो वक्तुमर्हति ॥ २५ ॥

अकार्यके लियेभी उत्साह दिलानेवाले और जो चित्तको बडी चातुरीसे आकर्षण कर लेते हैं कानोंके समीप मुख लगाकर भौरोंकी झंकारकी समान जो मीठी २ बातें बनानेमें निपुण हैं ऐसे पुरुष राजा लोगोंको खूब भोगते हैं ॥ २० ॥

कमलिनीने कान्ति पाई और कुमुदिनी मुँद गई, ऐसेही प्रायः सम्पत्ति या विपत्ति चिरकालपर्यन्त नहीं रहती हैं ॥ २१ ॥

इसी कारण बृहस्पति आदि आचार्योंने इस लोकमें सुखका देनेवाला और परलोकमें सुखका देनेवाला तथा इस लोक और परलोक दोनोंमें सुखका देनेवाला नीतिशास्त्रको उक्त विधिसे तीन प्रकारका माना है ॥ २२ ॥

इन तीनोंमेंसे इस लोकमें और परलोकमेंभी सुखका दाता नीतिशास्त्र सब शास्त्रोंमें परमोत्तम है, तथा परलोकमें सुख देनेवाला नीतिशास्त्रभी उत्तमही है परन्तु केवल इस लोकमेंही सुखका दाता नीतिशास्त्र नीचसेभी नीच है ॥ २३ ॥

जिसके ज्ञानसे मन्त्री लोग विष और शस्त्रादिकाके द्वारा स्वामीको मारकर अपने प्रिय राज्यको भोगते हैं इस लोकमें सुख देनेवाले उस नीतिशास्त्रको ऐहिक कहते हैं ॥ २४ ॥

राजाओंकी आज्ञाका भंग करना और वेदमार्गके उलंघन और ब्राह्मणोंके वध

अपराध विना मन्त्री प्रभुणा पीडितोऽपि सन् ।
न वैरूप्यं क्वचिद्याति तदामुष्मिकमुच्यते ॥ २६ ॥
राज्यग्रहणशक्तोऽपि मनसापि न चिन्तयेत् ।
सचिवः स्वामिनो नाशमैहिकामुष्मिकं हि तत् ॥ २७ ॥
शुकश्च सारणो वीरैश्चाहिको मंत्रिणो तव ।
वानरीं तनुमास्थाय हृतौ तत्र स्थितावपि ॥ २८ ॥
आवामामुष्मिकौ राजन्विरूपाक्षमहोदरौ ।
मैथिली दीयतां तूर्णं नो चेत् सहचरौ तव ॥ २९ ॥
रावणः-(सभयं सशिरःकम्पं स्वगतं वा स्वगतमेवोच्यते)
नीतिशास्त्रमिदं श्रुत्वा कुम्भकर्णः क्वचिद्बली ।
हन्ति चेन्मामतो युद्धे प्रथमं प्रेष्यतामयम् ॥ ३० ॥

करनेकी समान है । इसही कारण राजाओंको मारनेमें जो पाप होता है उसको शेषजीभी नहीं कह सक्ते ॥ २५ ॥

अपराधके विनाभी स्वामीसे पीडा दिये जानेपर जो मंत्री कभी विकारको प्राप्त नहीं होता उसको शिक्षा देनेवाला परलोकमें सुखदायक नीतिशास्त्र आमुष्मिक कहाता है२६॥

जो मंत्री राज्यको छीन लेनेमें समर्थभी होकर मनसेभी स्वामीके नाशका विचार नहीं करता उसको शिक्षा देनेवाला नीतिशास्त्र इस लोकमें और परलोकमेंभी सुखदायी ऐहिकामुष्मिक नीतिशास्त्र कहा जाता है ॥ २७ ॥

वीर शुक और सारण ये दोनों मन्त्री ऐहिक नीतिके धारण करनेवाले हैं। क्योंकि जो वानरोंके शरीरको धरकर गये हुए रामचन्द्रजीकी सेनामें अवतक स्थित हैं॥२८॥

हे राजन् ! विरूपाक्ष और महोदर हम दोनों आपको परलोकमें सुख देनेवाले हैं हमारी सम्मति तो यह है कि-आप जानकीको शीघ्र दे दीजिये नहीं तो हम दोनों तो आपके अनुचर हैं ही ॥ २९ ॥

रावण-(डरसे मस्तकोंको हिलाता हुआ मनमेंही विचारने लगा और मनमेंही कहनेभी लगा कि) कही बलवान् कुम्भकर्ण इस नीतिशास्त्रको सुनकर मुझेही न मार डाले, इस कारण पहिले उसकोही युद्धमें भेजना चाहिये ॥ ३० ॥

विरूपाक्षमहोदरौ-(प्रभोः शिरःकम्पनादन्तर्गतमभिप्रायमवगम्य)

नीतिशास्त्रविदो धर्मं केवलं नृपतेः पुरः ।
पठन्ति युवराजादिपुरतो न कदाचन ॥ ३१ ॥

हा नाथ लंकेश्वर ! किमित्यावयोः श्रद्धादिकारिणो-
वैरूप्यशंकामंकुरयासि तेऽन्ये दुरधिकारिणः पापाः ॥

उक्तं च-

न सर्पस्य मुखे रक्तं न दुष्टस्य कलेवरे ।
न प्रजासु न भूपाले धनं दुरधिकारिणि ॥ ३२ ॥

तेऽप्यधिकारिणः पापा ये द्विषन्ति निजं पतिम् ।
आवां तथा विधौ नैव भवानपि न मूढधीः ॥ ३३ ॥

नियुक्तहस्तार्पितराज्यभारास्तिष्ठन्ति ये स्वैरविहारसाराः ।
बिडालवृन्दाहितदुग्धमुद्राः स्वपन्ति ते मूढधियः क्षितीन्द्राः॥३४॥

अपि च-

उत्खातान्प्रतिरोपयन्कुसुमितांश्चिन्वँल्लघून्वर्धयन्
क्षुद्रान्कण्टकिनो बहिर्निरसयन्विश्लेषयन्संहतान् ।

विरूपाक्ष और महोदर (रावणके शिरोंके हिलनेसे चित्तका अभिप्राय समझकर कहने लगे कि) नीतिशास्त्रके ज्ञाता मंत्री केवल राजाकेही सामने राजधर्मका वर्णन करते हैं और युवराज आदेके सन्मुख कभी नहीं कहते ॥ ३१ ॥

हा नाथ लंकाधिपते ! क्या तुम श्रद्धाके अधिकारी हम दोनोंके विपरीत होनेकी मनमें शंका करते हो ऐसा करनेवाले दुष्ट सेवक औरही पापी होते हैं ॥

क्रोधके समय सर्पके मुँहमें रुधिर नहीं होता है, और दुष्टके शरीरमें रुधिर नहीं होता है, तथा क्रोधी दुष्ट अधिकारी राजाके होनेपर प्रजाओंमें धन नहीं रहता है॥३२॥

जो अपने स्वामीसेही वैर करते हैं वे अधिकारीभी पापी होते हैं, सो हम दोनों वैसे नहीं हैं तथा आपभी मन्दबुद्धि नहीं हैं जो हमको न जानते हो ॥ ३३ ॥

जो राजा लोग सेवकोंके हाथमें राज्यका भार सौंपकर स्वच्छन्द विहारको ही अपना कर्त्तव्य मान बैठते हैं मन्दबुद्धि मानो बिलावोंके समूहमें दूधका पात्र रखकर सोते हैं ॥ ३४ ॥

(और भी सुनिये) जैसे बाग लगानेमें चतुर माली उखाडे हुए पेडोंको फिरसे

अत्युच्चान्नमयन्नतांश्च शनकैरुन्नामयन्भूतले
मालाकार इव प्रयोगचतुरो राजा चिरं नन्दते ॥ ३५ ॥
राजन्कार्यवशाद्विरुद्धसंग्रहोऽपि राज्ञा शुद्धेनाशुद्धसंग्रहः
प्रयोजनहीनोऽपि कर्तव्यः। प्रयोजनं जनयति क्वचित्काले।
अत्र भगवान् भवतामिष्टः प्रमाणमेणाङ्कमौलिः ॥
जीर्णेऽप्युत्कटकालकूटकवले प्लुष्टे हठान्मन्मथे
नीते भासुरभालनेत्रतनुतां कल्पान्तदावानलैः।
यः शक्त्या समलंकृतोऽपि शशिनं शैलात्मजां स्वर्धुनीं
धत्ते कौतुकराजनीतिनिपुणः पायात्स वः शंकरः ॥ ३६ ॥
दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा शस्त्रं च किं भस्मना
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं परं द्वेष्टि किम्।

प्रस्थापित करता है, फूले हुओंसे फूल इकट्ठे करता है, छोटोंको बढाता है, काँटेवालोंको छोटे २ हीं बाहर निकाल देता है, मिले हुओंको पृथक् २ कर देता है और बडे ऊँचोंको काट छाँटकर नीचा करता है और नीचोंको धीरे २ ऊँचा करता है, तो चिरकालतक उस बागका आनन्द भोगता है ऐसेही राजकार्य करनेमें चतुर राजा, स्थानहीन हुए अधिकारियोंको दूसरे स्थानपर नियत करता है, पुष्पित हुए (धनी हुए) पुरुषोंसे कर लेता हुआ, छोटोंको उन्नति देता, प्रजाको दुःख देनेवाले क्षुद्र पुरुषोंको अधिकारसे अलग करता, आपसमें मिले हुए अधिकारियोंको अलग २ करता हुआ तथा अतिऊँचे पदपर पहुँचकर दुष्टता करनेवाले अधिकारियोंको अपने वशीभूत नीचे करता हुआ चिरकालपर्यन्त भूमंडलपर राज्यका आनन्द भोगता है ॥ ३५ ॥

हे राजन्! शुद्ध राजाकोभी कार्यवश विरुद्ध और प्रयोजनरहित अशुद्ध सेवककाभी संग्रह करना योग्य है क्योंकि—वहभी कभी न कभी प्रयोजन सिद्ध करही देता है। इस विषयमें आपके इष्टदेव भगवान् चन्द्रशेखर शिवही साक्षी हैं ॥

बडे पुराने उत्कट हालाहल विषके पीनेपर, हठसे कामदेवके भस्म होनेपर और कल्पान्तकी अग्नियोंके द्वारा दमकते माथेमेंके नेत्रकी सूक्ष्मताको प्राप्त होनेपर अपनी शक्तिसेही शोभायमान जो चन्द्रमा हिमाचलनंदिनी पार्वती और गंगाको धारण करते हैं वह कौतुककी राजनीतिमें कुशल शंकर आपकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥

यदि इन भगवान् शिवके दिशाही वस्त्र हैं तो इनको धनुषसे क्या काम है?

इत्यन्योऽन्यविरोधिकर्मनिरतं पश्यन्निजं स्वामिनं
भृङ्गी सान्द्रशिरावनद्धशकलं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः ॥ ३७ ॥
ब्राह्मणं मंत्रिणं द्रोणं शुद्धं वीरं भविष्यति ।
गुरुं दुर्योधनस्त्यक्त्वा यथा त्वं मा तथा भव ॥ ३८ ॥
(अत्रान्तरे मन्दोदरी रावणेन सह खेलमाना स्मरस्मेर-
वाणीविलासलीलया अशोकवनिकाप्रागम्य जानकी-
स्थानमाक्रम्योपविश्याह)

प्राणनाथ लंकेश्वर पश्य-
मन्दोदरीजनकजाङ्गमनोहरत्वे
भेदोऽस्ति कोऽपि यदि नाथ विचारय त्वम् ॥

रावणः-

मैनः प्रिये परिमलस्तव भेदमाख्या-
त्यङ्गे विदेहदुहितुः सरसीरुहाणाम् ॥ ३९ ॥

यदि शवही है तो विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? यदि भस्मही मली तो फिर इनको स्त्रीसे क्या प्रयोजन है ? और जो स्त्रीभी है तो फिर यह कामदेवसे इतना भारी विरोध क्यों करते हैं ? इस प्रकार एक दूसरेसे परस्पर विरोधका काम करनेमें तत्पर अपने स्वामीको देखता हुआ भृंगी सघन नाडियों करके चारों ओरसे बँधे हैं हाथ पैर आदि अंग जिसके और केवल हड्डियेंही जिसमें शेष रही हैं ऐसे निष्प्रयोजन शरीरको धारण करता है ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार ब्राह्मण, शुद्ध, वीर और मंत्रके देनेवाले अपने गुरु द्रोणाचार्यको छोडकर दुर्योधन होगा, उस प्रकारके आप न हूजिये ॥ ३८ ॥

(इसी अवसरमें रावणके साथ खेलती हुई मन्दोदरी कामोद्दीपक मुसकुराहटके साथ बातें करती विलासकी लीलाके द्वारा अशोकवाटिकामें आ जानकीके स्थानको घेरकर बैठके बोली कि) ॥

हे प्राणनाथ लंकापते ! देखो तो यदि मुझ मन्दोदरी और सीताके देहकी सुन्दरतामें कोई भेद हो तो ? हे नाथ इसे आप विचार करिये ॥

रावण-हे प्रिये ! तुम्हारे अंगमें तो मछलीकीसी गन्ध है और सीताके देहमें कमलोंकीसी सुगन्धिही भेदको बतलाती है ॥ ३९ ॥

रूपे तवास्याश्च न कोऽपिः भेदः खेदं प्रिये मद्वचनेन मागाः ।
सीताधरे वा मधुरे दशास्यो रामो रमिष्यत्यथ वाथ सद्यः॥ ४० ॥

मंदोदरी—(सकरुणा लंकामधिक्षिपति)

विभीषणः पापकथानिमग्नः स्वापाकुलोऽभूद्यदि कुम्भकर्णः ।
राजाभिमानी पतितः कलंके लंक निमग्नासि गभीरपंके ॥ ४१ ॥

इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।

इति श्रीहनुमन्नाटके मन्त्रिवाक्यं नाम नवमोऽङ्कः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽङ्कः ।

ततः सुन्दरं मन्दिरं प्रविश्य रावणः सानुचरः—

भो भो लंकेश्वरानुजीविनो जनाः शृणुत अहमिदानीं मायाप चरचनाभिर्जानकीमृदुसुरभिस्फीतदोर्मूललालित्यविराजमानपीनोन्नतकुचकलशोभितोरःस्थले खेलमानस्तन्मधुराधरं पास्यामि ॥

हे प्रिये ! तुम्हारे और इसके रूपमें कोईभी भेद नहीं है इस कारण तू मेरे वचनसे दुःखित मत होना. सीताके मधुर अधर में या तो रामचंद्रही रमण करेंगे या शीघ्रही यह दशमुख रावण रमण करेगा ॥ ४० ॥

मन्दोदरी—(करुणाके साथ लंकाके ऊपर आक्षेप करती है) विभीषण तो पापकी कथाओंमें निमग्न हो गया और कुंभकर्ण निद्राके वशमें है और अभिमानी राजा रावण कलंकमें डूब गया इस कारण हे लंके ! अब तू गहरी दलदलमें फँसगई॥४१

इस प्रकार कहकर सब चलेगये ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां मन्त्रिवाक्यं नाम नवमोऽङ्कः ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर सुन्दर मंदिरमें जाकर सेवकों सहित रावण—अरे ! रावणके सहारेसे जीवन धारण करनेवाले प्राणियो ! तुम सुनो मैं आज सीताके कोमल और सुगन्धियुक्त सुवर्णकी समान कान्तिवाले भुजमूल तथा मनोहरतासे विराजमान पुष्ट और उन्नत कुचकलशोंसे शोभायमान हृदयमें माया और छल करके क्रीडा करता हुआ इस सीताके मधुर अधरका पान करूंगा ॥

मायाविनोऽनुचराः—यद्रोचते देवस्य।

रावणः—

अथ रजनिचरेशो रामसौमित्रिमाया-
विरचितंशिरसी तद्रूपलावण्यपूर्णे।
गलदविरलरक्ते प्रेतपर्यस्तनेत्रे
जनकदुहितुरग्रे स्थापयामास पापः॥ १॥

जानकी—(सबाष्पं, शिरःसरसीरुहद्वयमालोकयति)

अहह जनकपुत्री फुल्लराजीवनेत्री
नयनसलिलधारागर्भनिर्मुक्तहारा।
रमणमरणभीता मृत्युना किं न नीता
हृदयदहनजालः संदहेद्वा विशालः॥ २॥

(रामशिरःकमलमधिकृत्य)

हा राम! हा रमण! हा जगदेकवीर! तत्किं न स्मरसि?।

मायावी सेवक—जो महाराजको अच्छा लगै॥

इसके अनन्तर राक्षसपति उस पापी रावणने बनाये हुए वैसेही सुन्दर निरन्तर रुधिरकी वर्षा करते हुए प्राणहीन हो जानेके कारण मुँदे नेत्रोंवाले रामचन्द्र और लक्ष्मणके शिरको सीताके सामने रक्खा॥ १॥

जानकी—(नेत्रोंमें आँसू भरकर दोनों कमलसमान शिरोंको देखने लगी) बडे शोककी बात है कि—खिले हुए कमलकी समान आंखोंवाली नेत्रोंके जलकी धाराके भीतर हारको त्यागनेवाली ऐसी यह जनकसुता सीता पतिकी मृत्युसे डरी हुई कहने लगी कि—हे नाथ! उस रावणरूप कालके द्वारा आपने मुझको अपने समीप क्यों नहीं बुला लिया? अथवा हृदयमें स्थित वियोगसे उत्पन्न हुई विशाल अग्निकी ज्वाला क्या मुझको भस्म नहीं करेगी?॥ २॥

(श्री रामचन्द्रजीके शिरःकमलकी ओरको देखकर) हा राम! हा नाथ! हा संसारभरमें एकमात्र वीर! क्या आपको वह स्मरण नहीं रहा?॥

अधरमधु मदीयं कामकेलीषु पीत्वा-
ऽमृतमिति यदवादीस्तीरवानीरकुञ्जे ।
किममृतपरिपूर्णं शीर्णमप्यम्बरेऽर्क-
स्तम इव नहि शत्रुं नाथ मथ्नासि घोरम् ॥ ३ ॥

रावणः—शिरोविरहशोकमोहरोषप्रेमाकुलामालापैराश्वासयति ।

जानकी—सत्वरं प्राणांस्त्यक्तुमिच्छन्ती भोः प्राणाधिनाथ राम !

अहह मधुरवाणी किं न वक्त्रारविन्दे
नयनकमलयोस्ते नो मदङ्गे विलासः ।
अमरपुरवधूनां वल्लभोऽद्यापि नूनं
व्रजतु परमहंसो मे त्वदालिङ्गनेन ॥ ४ ॥

इति रामशिरःकमलमालिङ्गितुमिच्छति, आकाशे कोलाहलः—

न खलु न खलु सीते रामभूपालमौलिः
समरशिरसि वध्यो न प्रियस्ते कदाचित् ।

हे नाथ ! जो कि कामक्रीडाओंके समय नदीके तटपर बेतके लतागृहोंमें मेरे अधर-रसको पीकर कहते थे, कि—क्या यह अमृत है ? इसके सामने तो यह आकाशमें का अमृत चन्द्रमाभी नीरस प्रतीत होता है, वह आज आप जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करता है, तैसे इस घोर शत्रुको क्यों नहीं मथ डालते ? ॥ ३ ॥

रावण—शिर कटनेसे शोक मोह क्रोध और रामके प्रेमसे व्याकुल हुई सीताको बातें बनाकर आश्वासन देता है ॥

सीता—(तत्काल प्राणोंके त्यागनेकी इच्छा करती हुई) हे प्राणनाथ ! हे राम ! बडे कष्टकी बात है कि—तुम्हारे मुखकमलमें मीठे वचन क्यों नहीं हैं ? और आपके नेत्रकमलोंका मेरे शरीरपर विलासभी क्यों नहीं है ? यदि तुम सचमुच इसी समय स्वर्गलोककी सुन्दरियोंके प्यारे हो गये हो तो जाइये परन्तु मेराभी यह जीवात्मा आपके आलिंगनद्वाराही अर्थात् आपके साथही जाय ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर रामचन्द्रजीके शिरःकमलको आलिङ्गन करनेकी इच्छा करती है । इतनेमेंही आकाशमें कोलाहल होता है—

हे सीते ! यह महाराज रामचन्द्रजीका शिर कभी भी नहीं है । तुम्हारे प्यारे रामचं-

स्पृश कथमपि मातर्मा निशाचारिणस्त्वं
हर हर हरभक्तस्यैष मायावतारः ॥ ५ ॥

इत्याकाशवाणीश्रवणमात्रेण शिरसी गगनमुत्पत्य निष्क्रान्ते रावणेन सह ॥

जानकी-(हसर्षं सत्रपं च) अयि परमधर्मिणि कृपातरंगिणि सरमे किमित्यद्भुतमिति ।

सरमा राक्षसी-(सदयम्)

जानकि त्वं न जानीषे रावणस्यातिदारुणाम् ।
मायामासाद्य मा भैषी रामः कामं स जीवति ॥ ६ ॥

कोलाहलं काहलमर्दलानां हेषारवं सज्जतुरंगमाणाम् ॥
आकर्णयाकर्णविशालनेत्रे रामागमादार्तनिशाचराणाम् ॥ ७ ॥

विरम विरम शोकात्कोपमानोऽथ रामः
सतनयपशुबन्धं रावणं मर्दयित्वा ।
बलभिदुपलनीलः कोमलः कोमलाङ्गि
त्वदधरमधुपानं हुं करिष्यत्यजस्रम् ॥ ८ ॥

न्द्रको युद्धमें कभी कोई वध नहीं कर सकता हे माता! तुम इस शिरको कदापि स्पर्श मत करना। शिव २ यह तो शिवभक्त राक्षस रावणकी मायाकी बनावट है ॥ ५ ॥

इस प्रकार आकाशवाणीको सुनतेही रावणसहित वे दोनों शिर आकाशमेंको उडकर चले गये ॥

सीता-(हर्षके साथ लज्जित होकर) अरी धर्माचारिणी कृपालु सखि सरमे! यह क्या अचरज है ? ॥

सरमा राक्षसी-(दयासे) हे जानकी! तुम नहीं जानती हो। रावणकी अति दुःखदायिनी मायाको देखकर डरो मत, वे रामचन्द्रजी तो निस्संदेह जीवित हैं॥६॥

हे कर्णपर्यन्त विशालनेत्रोंवाली सीते ! रामचन्द्रके आनेसे घबडाये हुए राक्षसोंके काहल नामक रणबाजेके तथा नगाडेके शब्दको तथा सजे हुए घोडोंकी हिनहिनाहटके शब्दको सुनो ॥ ७ ॥

अरी! शोकसे शान्त हो २ क्योंकि, इन्द्रनीलमणिकी समान श्यामशरीर सुकुमार रामचन्द्रजीको अब क्रोध आ गया है, इस कारण वे पुत्र आदि कुटुंबियोंस-

जानकी–

कामं जीवति मे नाथ इति सा विरहं जहौ ।
प्राङ्मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता ॥ ९ ॥

रावणः–ततः पुनरप्यशोकवाटिकां प्रविशति मारनाराचभिन्नो रावणः सुरसुन्दरीभिः परिवृतः सीताहृदये विकारमुत्पादयितुम् । भो जानकि पश्य ।

अस्मच्चण्डचपेटघातपतितः स्वर्दन्तिकुम्भस्थल-
स्थूलोन्मुक्तसरक्तमौक्तिकलतास्तोमार्चितांघ्रिस्तनाः ।
एतास्त्वत्पदपद्मषट्पदवधूप्रायाः पुरन्ध्र्यो ध्रुवं
सीते सम्प्रति संगतं तव सतीचारित्र्यवल्लीफलम् ॥ १० ॥
सीते पश्य शिरांसि यानि शिरसा धत्ते महेशः पुरा
तानि त्वत्पदसंश्रितानि सुभगे कस्मादवज्ञायसे ।

हित रावणका पशुकी समान बाँध और मसलकर हे कोमलाङ्गि ! तुम्हारे अधरोंका पान करेंगे, तुम डरो मत ॥ ८ ॥

जानकी–मेरे स्वामी निस्सन्देह जीवित हैं ऐसा विचारकर जानकीने शोकको त्याग दिया, और पहिले उन रामचन्द्रजीके अन्तको सत्य जानकर मैं अभी जीवित हूँ यह सोचकर लज्जाको प्राप्त हो गई थी ॥ ९ ॥

तदनन्तर रावण फिर कामदेवके बाणोंसे व्याकुल हो देवांगनाओंसे घिरा हुआ अशोकवाटिकामें प्रवेश करता है और सीताके चित्तमें विकार उत्पन्न करनेको कहता है कि–हे जानकि ! देख !

हे सीते ! मेरे प्रचण्ड चपेटेकी चोटके लगनेसे लुढकते हुए स्वर्गके हाथियोंके गंडस्थलसे गिरे हुए बहुतसे रुधिरयुक्त मोतियोंकी लडियोंके समूहसे भूषित चरणकमल और कुचोंवाली मेरी ये स्त्रियें इस समय जो तुम्हारे चरणकमलोंमें भौंरियोंकी समान सेवा करनेको प्राप्त हुई हैं सो तुमने अपने पातिव्रतरूप लताके विस्तारका फल पा लिया ॥ १० ॥

हे सीते ! देख–जिन शिरोंको मैंने पहिले महादेवके ऊपर चढाया था हे सुभगे ! वेही मस्तक तेरे चरणोंमें रक्खे हैं तू मेरा अपमान क्यों करती है, इस प्रकार पराई स्त्रीके लम्पट रावणकी बात सुनकर सीताने मुसकुराकर कहा कि अरे ! यह

श्रुत्वैवं परदारलम्पटवचः स्मित्वा हतं रावणं
निर्माल्यानि शिरांसि तानि तव धिक्साध्वीवचः पातु वः ११॥
भवित्री रम्भोरु त्रिदशवदनग्लानिरधुना
स ते रामः स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः ।
इयं यास्यत्युच्चैर्विपदमधुना वानरचमू-
र्लघिष्ठेदं षष्ठाक्षरपरविलोपात्पठ पुनः ॥ १२ ॥

(सवैदग्ध्यम्)

रे रे लङ्केश लौल्यात् त्रिपुरविजयिनो मा प्रतीषीः प्रसादं
मा मां छित्त्वाल्पबुद्धे न खलु भवसि वै प्राकृतः प्राणरंकः ॥
मारारे मावितारीर्विरमनलभुवा शापितोऽसीति यस्य
क्रुद्धं मूर्धानमीशोऽप्यनुनयति भृशं सोऽयमुच्चैर्दशास्यः ॥ १३ ॥

शिर शंकरपर चढाये हुए निर्माल्य (अर्थात् स्पर्श करनेके अयोग्य) हैं अरे तुझको धिक्कार है । यह पतिव्रता सीताका वचन तुम्हारी रक्षा करै ॥११॥

हे केलेके खंभकी समान जंघावाली ! अभी देवताओंके मुखोंकी मलिनता होनेवाली है, अर्थात् रामचन्द्रके नष्ट होनेपर देवताओंके मुखभी उतर जांयगे; जिनके लक्ष्मण भ्राता है वे रामचन्द्रभी युद्धमें मेरे सन्मुख खडे नहीं हो सकेंगे, यह वानरोंकी सेना अभी बडी भारी आपत्तिमें फँसेगी । यह सुनकर जानकीने कहा कि-हे नीच ! इस श्लोकके पहिले तीन चरणोंके छठे अक्षरसे आगे सातवें अक्षरका लोप करके फिर पढ " त्रिदशवदनग्लानि " पदके स्थानमें 'दशवदनग्लानि' ऐसा रहता है जिसका अर्थ हुआ कि-रावणकेही मुख उतर जाँयगे, दूसरे चरणमें सातवें अक्षर 'न' का लोप होनेसे 'स ते रामः स्थाता युधि पुरतः' का अर्थ होता है कि-युद्धमें रामचन्द्र तेरे सामने खडे होंगे, तथा तीसरे चरणमें सातवें अक्षर 'वि' का लोप होनेसे 'वानरचमूः उच्चैः पदं यास्यति' का यह अर्थ होता है कि-वानरोंकी सेना उच्चपदको पावेगी ॥ १२ ॥

रावण-(चतुरतासे) अरे रे लंकापते ! तू त्रिपुरासुरनाशक शिवजीके अनुग्रहकी इच्छा मत कर हे क्षुद्रबुद्धे ! तू हमें काट २ कर कामरिपु पार्वतीपतिके वरोंका भागी नहीं होगा । हे कामनाशक ! आपभी इसको वर न दीजिये क्योंकि तुमको अग्निकुमार स्वामिकार्त्तिकेयने शाप दिया है, हे सीते ! जिसके इस प्रकार क्रोधित हुए मस्तकको शंकरभी समझाते हैं वह मैं दशकंठ रावण हूं ॥ १३ ॥

अर्धं चेतसि जानकी विरमयत्यर्धं च लंकेश्वरः
किं चार्धं विरहानलः कवलयत्यर्धं च रोषानलः ।
इत्थं दुर्विधवैशसव्यतिकरे दाहे समेऽप्येतयो-
रेकं वेद्मि तु पारदग्ध्यमपरं दग्धं करीषाग्निना ॥ १४ ॥
मुग्धे मैथिलि चन्द्रसुन्दरमुखि प्राणप्रयाणौषधि
प्राणान् रक्ष मृगाक्षि मन्मथनदि प्राणेश्वरि त्राहि माम् ।
रामश्चुम्बति ते मुखं च सुमुखेनैकेन चाहं पुन-
श्चुम्बिष्यामि तवाननं बहुविधैर्मुखाग्रहं मानिनि ॥ १५ ॥

जानकी—

विरम विरम रक्षः किं वृथा जल्पितेन
स्पृशति नहि मदीयं कण्ठसीमानमन्यः ।
रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्ते-
र्दशमुख भवदीयो निष्कृपो वा कृपाणः ॥ १६ ॥

और रामचन्द्रजीके मनके आधे भागको तो जानकी घेरे हुए है और आधेको रावण उसमें जानकीके स्मरणके घेरे हुए अर्धभागको वियोगकी अग्नि जलाती है और दूसरे आधे भागको क्रोधकी अग्नि जलाती है ऐसी अद्भुत प्रकारकी हिंसाका जिसमें शीत उष्णकी समान व्यवसाय है ऐसे कामदेव और क्रोधकी अग्निके दाह समान होनेपर चित्तके एक आधे भागको भूसीसे जला हुआ और दूसरे आधे भागको उपलोंकी तेज अग्निसे भस्म हुआ जानता हूं ॥ १४ ॥

अरी अजान ! जनकनन्दिनि ! हे सुन्दरचन्द्रवदनी ! हे निकलते हुए प्राणोंकी औषधिरूप ! तू मेरे प्राणोंकी रक्षा कर, हे मृगनयनि ! हे मदनकी नदि ! हे प्राणेश्वरी ! तू मेरी रक्षा कर, हे मानिनि ! रामचन्द्र तो तेरे मुखको अपने एकही मुखसे चूमते हैं और मैं तेरे मुखको अपने बहुतसे मुखोंसे चुम्बन करूंगा, इस कारण तू अपने हठको त्याग दे ॥ १५ ॥

जानकी—रे राक्षस ! थम, थम, वृथा बकवादसे क्या लाभ है ? अरे ! मेरे कण्ठकी सीमाको नीलकमलकी समान कान्तिवाले रामचन्द्रजीके भुजदण्ड अथवा तेरी कठोर तलवारके सिवाय और दूसरा कोईभी नहीं छू सकता ॥ १६ ॥

पश्य-

मद्ध्यानेनाभवद्रामः सीता रक्षस्तु तस्य वै ।
पश्य त्वत्कुलनाशाय मया रामेण भूयते ॥ १७ ॥

इति रावणो निष्क्रान्तः ।

निजमन्दिरं कियन्तं समयं नीत्वा (स्वगतं) महान्तं प्रपंचमुत्पाद्य नूनं जानकीमनुभविष्यामीत्यवधार्य-

भेरीनिःसाणशंखध्वनिगणतुरगस्यन्दनस्फीतनादैः
सानन्दं राक्षसेन्द्रः कटकभटभुजास्फालकोलाहलेन ।
लंकामापूर्य रामः स्वयमभवदथो मायया रावणस्य
छिन्नान्मूर्ध्नो दधानः शिरसिरुहभरेष्वेकतः पञ्च पञ्च ॥ १८ ॥

एवं विधो भूत्वा पुनरशोकवनिकां प्रविश्य रावणः-

लंकाभटोऽथ रघुनन्दनवेषधारी
पापो जगाम पुरतो जनकात्मजायाः ।
नाम्नापि यस्य कुत इच्छति तस्य रूपा-
दन्याङ्गनापहरणे न मनः कदाचित् ॥ १९ ॥

देख-अरे राक्षस ! रामचन्द्रजी तौ मेरी चिन्तासे सीता (दुर्बल) ही हो गये और यह निश्चय समझ कि-उनके ध्यानसे मैं तेरे कुलका नाश करनेके अर्थ रामचन्द्र हो गई हूं ॥ १७ ॥

यह सुनकर रावण चला गया और अपने मन्दिरमें कुछ थोडेसे समयको बिताकर मनमेंही विचारने लगा कि-इस समय एक बडे भारी प्रपंचकी रचना करके मैं निस्संदेह जानकीको भोगूंगा ऐसा विचार करके-

इसके उपरान्त भेरी, निसान और शंखोंकी ध्वनि तथा घोडे रथोंके गंभीर शब्दों करके और सेनाकरके योधाओंकी भुजाके ताडनके शब्दसे लंकाको परिपूर्ण करके आनन्दके साथ वह राक्षसराज रावण मायासे रावणके केशोंके मध्यमें पकडे हुए कटे हुए शिरोंको एक २ हाथमें पांच २ धारण किये हुए स्वयंही रामरूप बनगया ॥ १८ ॥

इस प्रकारका होकर फिर अशोकवाटिकामें जाकर रावण-अब लंकाका वीर दुष्टात्मा रावण रामचन्द्रका स्वरूप धारण कर जानकीजीके समीप गया, जिन

जानकी (रघुनन्दनवेषधारिणं तमालोक्य, सहर्षम्)
साक्षादालोक्य रामं झटिति कुचतटीभारनम्रापि हर्षा-
दुत्थायोदस्तदोर्भ्यां दरदलितकुचाभोगचेलोन्नताङ्गी ।
धन्याहं प्राणनाथ त्यज रजनिचरच्छिन्नशीर्षाणि गाढं
मामालिंगाद्य खेदं जहि विरहमहापावकः शान्तिमेतु ॥ २० ॥
(इत्यालिंगितुमिच्छति)

रामवेषधारी रावणः—(सविषादम्)
भूत्वा ततोऽप्यवसरे जनकात्मजायां
लंकापतिर्मकरकेतुशरातुरायाम् ।
क्लीबो विशीर्णमणिदण्डयुतः स्मरार्तः
पापात्ततः शिव शिवान्तरधीयत द्राक् ॥ २१ ॥

जानकी—(सरमोपदेशाद्रावणं रघुनन्दनवेषधारिणं मत्वा सविषादं)
हाकाश ! हा धरणि ! हा वरुणार्क ! वायो !
वेत्स्यामि धर्म कथमागतमात्मनाथम् ।

रामचन्द्रजीके नाममात्रका स्मरण करनेसेही चित्त परस्त्रीकी इच्छा नहीं करता तो फिर उनके साक्षात् रूपसे मन परस्त्रियोंके हरण करनेमें कैसे प्रवृत्त हो सक्ता है॥१९॥

जानकी-(रामचन्द्रजीके वेषको धारण करनेवाले रावणको देख, हर्षके साथ) सीताजी यद्यपि स्तनोंके भारसें नम्र हो रही थी तो रामचन्द्रजीको प्रत्यक्ष देख बडे हर्षसे तत्कालही उठकर उनको आलिंगन करनेके लिये भुजाओंको फैलाया और कुछ एक फटे हुए कुचाओंके वस्त्रसे उन्नत शरीरवाली होकर कहने लगी कि- हे नाथ ! मैं धन्य हूं. इन कटे हुए रावणके मस्तकोंको फेंक दो और दुःखको त्याग मेरा गाढ आलिङ्गन करो, जिससे कि-आपके विरहका परम दाह शान्त होवे ॥२०॥

(ऐसा कहकर आलिङ्गन करनेकी इच्छा करती है)

इसी बीचमें रामचन्द्रजीका वेष धारण करनेवाला रावण-(विषादके साथ) उस समय कामके बाणोंसे जर्जरित हुई जानकीके विषयमें लंकापति रावण विशीर्णमणिदण्डवाला (नपुंसक) होकर हे शिव ! हे शिव ! ऐसा कहता हुवा सीताको धोका देनेके पापसे तत्कालही अन्तर्धान हो गया ॥ २१ ॥

जानकी-(सरमा राक्षसीके कहनेसे रावणको रामवेषधारी जानकर विषादपूर्वक) हे आकाश ! हे पृथिवी ! हे सूर्य ! हे पवन ! हे धर्मराज ! मैं आये हुए अपने

(आकाशे) मन्दोदरी रघुशराहतराक्षसेन्द्रं
चुम्बिष्यति त्वमपि वेत्स्यसि तत्र रामम् ॥ २२ ॥

अथ निजकेलिमन्दिरस्थो रावणः–(स्वगतम्)

कृतकृत्येऽपि रामत्वे वर्तमाने मयि स्थिते ।
निरुध्यन्त्येव ताः सर्वाः पापमूलाः प्रवृत्तयः ॥ २३ ॥

जनस्थाने भ्रान्तं विषयमृगतृष्णाहृताधिया[1]
वचो वैदेहीति प्रतिपदमुदश्रु प्रलपि ।
कृता लंकाभर्तुर्वदनपरिपाटीषु घटना
मयाप्तं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगता ॥ २४ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके रावणप्रपञ्चो नाम दशमेऽङ्कः ॥ १० ॥

प्राणप्रिय रामचन्द्रजीको कैसे पहिचानूँगी ? (उसी समय आकाशवाणी हुई कि) जिस समय रामचन्द्रजीके बाणोंसे मृत्युको प्राप्त हुए रावणको मन्दोदरी चुम्बन करेगी उस समय तुमभी रामचन्द्रजीको पहिचान लोगी ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् अपने क्रीडास्थानमें बैठा हुआ रावण (आपही आप) कर्त्तव्य कार्यको सम्पादन करनेवाले रामवेषमें मेरे स्थित होनेपरभी न जाने पहिले किस पापके कारण ये नपुंसक होना आदि प्रवृत्तियें मुझे मनोरथ पूरा करनेसे रोके देती हैं ॥ २३ ॥

मैं सीताकी अभिलाषारूप मृगतृष्णासे हतबुद्धि हो दण्डकारण्यमें घूमा, आँसुओंके साथ रुदन करते हुए हा जानकि ! यह वचन कहते पद २ पर विलाप किया, जिस समय मायासे मैंने रामका रूप धारण करा उस समय अपने शिरभी काटे, इस प्रकार तो मैंने रामपना पा लिया परन्तु जनकदुलारी सीता तबभी न मिली ॥ २४ ॥

इति हनुमन्नाटक भाषाटीकायां रावणप्रपञ्चो नाम दशमोऽङ्कः समाप्तः ॥ १० ॥

---

१ तृष्णान्वितधिया इति पाठान्तरम् ।

एकादशोऽङ्कः ।

अथ तत्र सुवेलाद्रिकटके लंकापतेः सकाशादधिगतं दूतमङ्गदं जानकीवल्लभः पप्रच्छः । अये दूताङ्गद ! लंकेश्वरे सन्धिर्न जनिता प्रीतिकारिणी स्यादनुपकारिणी वा ॥

अङ्गदः—राजन् सर्वथेयमनुपकारिणी पुलस्त्यापत्ये प्रीतिरिति भगवानिहोदाहरणम् हरिणाङ्कशेखरस्तद्गुरुत्वात् ॥

उक्षा रथो भूषणमस्थिमाला भस्माङ्गरागो गजचर्म वासः ।
एकालयस्थेऽपि धनाधिनाथे सख्यौ दशेयं त्रिपुरान्तकस्य ॥ १ ॥

रामः—(विहस्य)

भो महावीराङ्गद युवराज वानरभटान्ब्रूहि । भो भोः सुग्रीवसैनिकाः रात्रौ सावधानतया स्थातव्यं श्वः सूर्योदये रामस्य समरोत्सवो भविष्यति ॥

इसके उपरान्त उधर सुवेलपर्वतके ऊपर सेनाके पडावमें रावणके पाससे आये हुए अङ्गद नामक दूतसे सीतापति रामचन्द्रजीने पूछा कि, हे अङ्गद ! रावणसे सन्धि की जाय तो भलाई होगी या बुराई यह तुमने नहीं कहा ।

अङ्गद—हे राजन् पुलस्त्यके वंशमें उत्पन्न हुए रावणसे सन्धि करना सर्वथा हानिकारकही होगा; क्योंकि—इस विषयमें चन्द्रमौलि भगवान् शिवही साक्षी हैं कारण कि उसके वह गुरु हैं ॥

त्रिपुरासुरविनाशी शिवकी, कुबेरकी समान मित्रके एकही स्थान कैलासमें स्थिर होनेपरभी यह विपरीत दशा है कि—सवारी बैल है, हड्डियोंकी मालाका गहना है, भस्मका अङ्गराग है, और हाथीके चमडेका वस्त्र है, तो उनके शिष्य रावणकी मति विपरीत होनेमें क्या सन्देह है ? ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी—(हँसकर) हे युवराज महाबली अङ्गद ! तुम वानरभटोंसे कह दो कि—भो भो ! सुग्रीवकी सेनाके वानरो ! आज रातमें बहुतही सावधान रहना, कल प्रभात होतेही रामचन्द्रके संग्रामका उत्सव होगा ॥

अङ्गदः—(तथैव करोति)

कटके शयानौ रामलक्ष्मणौ निहन्तुं रावणेन प्रहिता प्रभञ्जनी नाम राक्षसी ॥

उत्खातदारुणसुतीक्ष्णकृपाणिकासौ
वीराटवीषु निशि निर्भरतः शयानम्।
दृष्ट्वा सुदर्शनगुरुभ्रमणेन गुप्तं
रामं निहन्मि कथमद्य वरं वराकी ॥ २ ॥

तत्रावसरे प्रबुद्धमंगदं वीरमवगम्याधीरं पुनर्गन्तुमुद्यता प्रभञ्जनी ॥

अङ्गदः—(साटोपम्)

मा गास्तिष्ठ निशाचरि क्षणमपि स्थित्वा पुनर्गम्यतां
यत्रास्ते भुजविक्रमाखिलजगद्विद्रावणो रावणः।
अद्याप्यङ्गदबाहुपाशपतिता मूढे किमाक्रन्दसे
सिंहस्यान्तिकमागतेव हरिणी कस्त्वां परित्रायते ॥ ३ ॥

अङ्गद—(वैसाही करते हैं अर्थात् वीरवानरोंको सावधान करते हैं)।

सेनाके पडावमें सोते हुए राम लक्ष्मणको मारनेके निमित्त रावणकी भेजी हुई प्रभंजनी नाम राक्षसी ॥

रात्रिके समय बडे दारुण और तेज खड्गको धारण करनेवाली यह पुंश्चली रातके समय वीरोंकी पंक्तियोंके मध्यमें गहरी नींदमें सोते और सुदर्शन चक्रसे रक्षित रामचन्द्रजीको देखकर आज इनको मैं किस प्रकारसे वध करूं? यह सोचने लगी ॥ २ ॥

उसी अवसरमें वीर अंगदको जागा हुआ जानकर प्रभंजनी अधिर होकर जानेको उद्यत हुई ॥

अङ्गद—(ललकार) अरी राक्षसी! खडी रह! भागै मत! थोडी देरतक ठहरकर तहां जाना कि–जहां निज भुजदण्डोंके पराक्रमसे समस्त संसारको रुलानेवाला रावण है। अरी मूर्ख! तू अंगदके बाहुरूप पाशोंमें पडी हुई रोती क्यों है? सिंहके पास पहुँची हुई हिरनीकी समान तुझ मेरे समीप आई हुईको देखूँ अब कौन बचा सक्ता है? ॥ ३ ॥

कटके वानरभटास्तद्घोरचीत्कारमाकर्ण्य भैरवरवै-
र्दोस्तम्भास्फालकेलिमभिनीय साटोपमुत्पाटितमू-
लोग्रशैलधारिणः प्रचण्डकोलाहलेन लङ्कामाकु-
लयन्तोऽकूपारस्येव यामिन्याः परं गताः ॥
लंकायां रावणः सूर्योदयमासाद्य वानरवाहिनीको-
लाहलामर्षमूर्च्छितः समरभूमौ कटकमुत्कटं प्रस्था-
प्य लंकाचलशिखरपर्य्यंकमारुह्य पुरस्थितेन महो-
दरेण मंत्रिणा सह रामवाहिनीमहिमानं पश्यति स्म ।

तत्र रामकटके वानराः—

खेलन्तोऽखिलवानरा जलनिधौ दृष्ट्वा रणे राक्षसा-
नुत्पाट्याशु विमानमेव जगृहुः पृथ्वीं समां चक्रिरे ।
दृष्ट्वा तं च विभीषणं रघुपते त्राहीति वाक्यं तदा
श्रुत्वासौ हनुमानुपेत्य तरसा प्रीत्या ददर्श स्वयम् ॥ ४ ॥

लश्करमें वीर वानर उसकी घोर चिल्लाहटको सुनकर डरावने शब्दोंसे और भुजदण्डोंपर थाप देनेका खेलसा करके बडे २ पहाडोंको झटपट जडमूलसे उखाड २ धारण किये प्रचण्ड कोलाहलसे लंकाको व्याकुल करते हुए समुद्रकी समान रात्रिके पारको प्राप्त हुए ॥

लंकामें सूर्योदयके समय रावण वानरोंकी सेनाके कोलाहलको सुननेपर क्रोधसे चेतनारहित हो युद्धभूमिमें अनेक वीरोंकी उत्कट सेनाको भेजकर स्वयं त्रिकूटाचल पर्वतके शिखररूप शय्यापर चढकर समीप बैठे हुए महोदर नाम मन्त्रीके साथ रामचन्द्रजीकी सेनाके प्रभावको देखने लगा ॥

उस समय रामचन्द्रकी सेनामें समुद्रके तटपर खेलते हुए सब वानरोंने युद्धभूमिमें राक्षसोंको देखकर और शीघ्रतासे वृक्षोंको उखाडकर पृथ्वीको मैदान कर डाला परन्तु बली विभीषणको देखकर कहने लगे कि—हे राम ! रक्षा करो । तब उनके इस वाक्यको सुनकर हनुमान्जी तत्काल आये और बडे प्रेमके साथ महावीर हनुमान् स्वयं विभीषणके समीप गये ॥ ४ ॥

लङ्कायां रावणः महोदरं पृच्छति। भो महोदर!
कदागतो रामोऽस्माभिर्न विदितं रामागमनदिनम् ॥

महोदरः-(सीतां प्रयच्छतु रामायेति बुद्ध्या साहसमवलम्ब्य)

राजल्लँकेश्वर!

न्यञ्चद्भूवलयं चलत्क्षितिधरं क्षुभ्यत्समस्तार्णवं
त्रस्यद्वैरिवधूविलोचनजलप्रारब्धवर्षोद्गमम्।
प्रोदंचत्कपिवाहिनीपदभरव्याधूतधूलीपट-
च्छन्नादित्यपथं कथं न विदितं तज्जैत्रयात्रादिनम् ॥ ८ ॥

जयप्रयाणे रघुनन्दनस्य धूलीकदम्बास्तमिते दिनेशे।
शशिप्रभं छत्रमुदीक्ष्य बाला सूर्योदये रोदिति चक्रवाकी ॥ ६ ॥

सहायार्थमिन्द्रप्रदत्तं छत्रगजतुरंगावलीसंभवो रामदेवस्य ॥

रावणः-महोदर! रामः कुत्रास्ते।

महोदरः-देव! पश्य-

लंकामें महोदरसे रावण पूंछने लगा कि-हे महोदर! राम यहां कब आ गये? इनके आनेके दिनका तो समाचार हमको विदित नहीं हुआ॥

महोदर-(रामचन्द्रको जानकी देदो, ऐसी बुद्धिसे साहसका आश्रय करके) हे राजन्! लंकेश्वर! भूमण्डलको झुकाता पहाडोंको हिलाता सब समुद्रोंको शोभित करता शत्रुओंकी व्याकुल हुई स्त्रियोंके नेत्रोंके जलसे वर्षाकालके आगमनका आरम्भ करता और अत्यन्त उछलते हुए वानरोंकी सेनाओंके चरणोंके बोझसे उडी हुई धूलिके समूहसे सूर्यके मार्गका रोकनेवाला श्रीरामचन्द्रजीकी विजययात्राका दिन तुमने कैसे नहीं जाना?॥

रामचन्द्रजीकी विजययात्राके समय जब धूलिपटलसे सूर्य छिप गया तब उसे चन्द्रमाकी सदृश कान्तिवाला देखकर सूर्यका उदय विद्यमान रहतेभी कोई युवती चक्रवाकी रोने लगी॥ ६॥

रामचन्द्रजीकी सहायताके अर्थ इन्द्रने छत्र हाथी और अनेकों घोडे भेजे॥

रावण-महोदर! रामचन्द्र कहाँ है?।

महोदर-हे स्वामिन्! देखो!

अङ्के कृत्वोत्तमांगं प्लवगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तु-
र्भूमौ विस्तारितायां त्वचि कनकमृगस्याङ्गशेषं निधाय ।
बाणं रक्षःकुलघ्नं प्रगुणितमनुजेनार्पितं तीक्ष्णमक्ष्णोः
कोणेनोद्वीक्ष्यमाणस्त्वदनुजवचने दत्तकर्णोऽयमास्ते ॥ ७ ॥

आपि च-

भ्रूभङ्गाद्बद्धसिन्धू रघुपतिरवताद्वन्दिना वेदितोऽसौ
विष्टस्ते मातुलस्य त्वचि पुनरनुजं मंत्रिणो दत्तकर्णः ।
बाणे दत्तार्धदृष्टिस्तव जयपिशुने लक्ष्मणे सस्मितो यः
सुग्रीवग्रीवबाहुः कृतचरणभरः सोऽङ्गदे रावणोऽयम् ॥ ८ ॥
गगनं गिलितं भूमिर्गिलिता गिलिता दिशः ।
सरितः प्लगवैः पीताः सीतापतिपदानुगैः ॥ ९ ॥
देव महोत्पातं पश्य मध्यन्दिनेऽपि ।

वानरराज सुग्रीवकी गोदमें शिर और अक्षकुमारके मारनेवाले हनूमान्की गोदमें चरणोंको रखकर तथा भूमिमें बिछाई हुई सोनेके मृगकी मृगचर्मपर शेष शरीरको स्थापित करके छोटे भाई लक्ष्मणकी दी हुई प्रत्यंचापर चढे राक्षसकुलनाशक तीक्ष्ण बाणको नेत्रोंके कोणसे देखते हुए श्रीरामचन्द्रजी देखो यह आपके भाई विभीषणकी बातोंमें कान लगाये हुए हैं ॥ ७ ॥

और भी-हे रावण ! जिन्होंने अपनी भ्रुकुटीके चलानेमात्रसेही समुद्रको बाँध लिया वन्दीजन जिनसे निवेदन कर रहा है कि-महाराज ! रक्षा करो ! तथा तुमारे मामा मारीचके चर्मपर बैठे हुए जो तुम्हारे छोटे भाई विभीषणके मन्त्रको कान लगाये सुन रहे हैं जिनकी दृष्टि आधी बाणपर है और जो तुम्हारी जयके विनाशी लक्ष्मणकी ओरको मुसकुराते हुए सुग्रीवके गलेमें गलबैयां डाले अंगदकी गोदीमें चरणका भार डाले हुए हैं यही शत्रुके रुलानेवाले रामचन्द्र हैं ॥ ८ ॥

हे दशमुख ! सीतापति रामचन्द्रजीके सेवक वानरोंने आकाश व्याप्त कर दिया पृथ्वीको अदृश्य कर दिया समस्त दिशाओंको छाकर प्रकाशरहित कर दिया और नदियोंको मानो पान कर लिया ॥ ९ ॥

हे स्वामिन् ! देखो तो सही मध्याह्नसमयमेंभी यह महा उत्पात होते हैं ।

क्वचिन्मीनः क्वचिन्मेषः क्वचिल्लम्बितकृत्तिका।
क्वचिन्मृगशिरः सार्द्रं नभो व्याधगृहायते ॥ १० ॥

रावणः–(साभ्यसूयम्)

अहो महोदरामात्य किमर्थं वल्गसे–पश्य
प्रतापं संसोढुं रविरपि दशास्यस्य न विभु-
र्निमज्जत्युन्मज्जत्यपरजलधौ पूर्वजलधौ।
हरिः शेते वार्धौ निवसति हिमाद्रौ पुरहरो
विरिञ्चिः किञ्चापि स्वनिजकमलं मुञ्चति न वा ११॥

अत्रान्तरे यथा रावणो न वेत्ति तथाशोकवनिकास्थितविमाने जानकीमारोप्य रामं दर्शयति स्म सरमा॥

विदेहदुहितुर्दृष्टिर्दशग्रीवरिपौ बभौ।
भृङ्गालीव मनोरम्ये तमाले मधुपाङ्गना ॥ १२ ॥

मीनरूप कहीं पूर्वा उत्तरा तथा रेवतीनक्षत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं, कहीं मेषरूप अश्विनी भरणी दीख रहे हैं, कहीं कृत्तिका लम्बायमान है और कहीं आर्द्रासहित मृगशिरा है, इस प्रकार इस समय समस्त आकाश व्याधके घरकी तुल्य प्रतीत हो रहा है (क्योंकि-व्याधके घर भी मीन, मेष, लटकती हुई कृत्तिका कहिये छुरी और रुधिरसे आर्द्र (गीला) मृगका शिर होता है) ॥ १० ॥

रावण–(डाहके साथ) हे महोदर मंत्री ! क्यों बक २ करता है ? देख ! रावणका प्रताप सहनेको सूर्य भी समर्थ नहीं है, इसही कारण वह पश्चिम और पूर्वके समुद्रमें डूबता उछलता है, मेरे डरसे विष्णु समुद्रमें सोते है, महादेवजी कैलासपर रहते हैं और ब्रह्माभी नहीं मालूम कि, अपने उत्पत्तिस्थान कमलको छोडता है या नहीं ? अर्थात् उस बूढेकी तो मैं खबरभी नहीं रखता ॥ ११ ॥

इसी समय जिस प्रकार रावण न जान सके ऐसी युक्तिसे अशोकवाटिकामें रक्खे हुए विमानमें जानकीको बैठाकर सरमा राक्षसीने रामचन्द्रजीके दर्शन कराये ॥

जनकनन्दिनी जानकीकी दृष्टि रावणारि रामचन्द्रजीमें ऐसी शोभाको प्राप्त हुई जैसे कि–मनोहर नीले तमालके वृक्षपर भौंरी शोभा देती है ॥ १२ ॥

तत्र रामकटके वानराणाम्–

हेमप्राकारजघनां रत्नद्युतिदुकूलिनीम् ।
लंकामेके त्रिकूटस्य ददृशुर्वनितामिव ॥ १३ ॥

लंकायां रावणः–भो महोदर ! सर्वैर्मन्त्रिभिः प्रबोध्यतामयं वीरः कुम्भकर्णः ॥

महोदरः–यदाज्ञापयति देव (इतिनिष्क्रम्य कुम्भकर्णनिद्रालयं जगाम ।)

तत्र कुम्भकर्णप्रिया–

विरम विरम तूर्णं कुम्भकर्णस्य कर्णा-
न्न खलु तव निनादैरेष निद्रां जहाति ।
इति कथयति काचित्प्रेयसी प्रेक्ष्यमाणा
मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् ॥ १४ ॥

निद्रां तथापि न जहौ यदि कुम्भकर्णः
श्रीकण्ठलब्धवरकिन्नरकामिनीनाम् ।
गन्धर्वयक्षसुरसिद्धवराङ्गनाना-
माकर्ण्य गीतममृतं परमं विनिद्रः ॥ १५ ॥

उधर रामचन्द्रजीके दलमें वानरोंमेंसे किन्हीने सोनेके परकोटेरूप जंघावाली तथा रत्नोंकी कान्तिरूप साडीवाली लंकापुरीको त्रिकूटाचलकी स्त्रीकी समान देखा ॥ १३ ॥

लंकामें रावण बोला कि– हे महोदर ! सब मंत्री मिलकर इस वीर कुम्भकर्णको जगावें ॥

महोदर–जो आज्ञा महाराजकी, (यह कहकर वहाँसे उठकर कुम्भकर्णके शयन करनेके महलमें गया) ॥

कुम्भकर्णके गलेके छिद्र अर्थात् मुखमेंको हाथियोंका झुंड मच्छरोंकी समान घुस रहा था उसे देखकर कुंभकर्णकी कोई स्त्री यों कहने लगी कि हे महोदर ! तू कुंभकर्णके कानके पाससे हट जा २ तुम्हारे शब्दसे ये निद्राको नहीं त्यागेंगे ॥ १४ ॥

जब इतनेपरभी कुम्भकर्णने नींदको नहीं छोडा तब शिवजीके वरदानके प्रभावसे पाई हुई किन्नरोंकी स्त्रियोंके और गन्धर्व यक्ष देवता सिद्धादिकोंकी स्त्रियोंके अमृतसमान गानको खूब सुनकर निद्रासे जागा ॥ १५ ॥

स्वकटके मारुतिः-

जृम्भासंभारभीमभ्रुकुटितटनटत्कुम्भकर्णाट्टहास-
व्यासव्याकोशवक्त्रव्यतिकरचकितप्राणिपुण्यप्ररोहः ।
लीलालोलन्मृणालीमृदुमिथिलसुतासङ्गभूपालहंसः
पायात्सिन्दूरपूर्वाचलशिखरशिरःशेखरो रामचन्द्रः ॥ १६ ॥

लंकायां कुम्भकर्णः-

सुप्तोत्थितः कवलयन् पलशैलजालं
तीव्रासवं परिपिबन्नपि कुम्भकर्णः ।
तृप्तिं जगाम न तथेत्यवदत् सुराया
गंगां पिबामि यमुनां सह सागरेण ॥ १७ ॥

स्वकटके रामः-

उपस्थितं वीक्ष्य तमाह रामो लंकाशिरोनिर्मितजानुदघ्नम् ।
भो मारुते यन्त्रमुदस्तमेतत्किन्नेत्यवादीत्स च कुम्भकर्णः ॥ १८ ॥

कुम्भकर्णः-(रावणसमीपभागमागम्य) भो राजन् !

अपने सेनादलमें हनुमान्‌जी कहने लगे कि-जँभाईके लेनेसे अत्यन्त भयानक भृकुटियोंके समीप प्रकट होते हुए कुंभकर्णके अट्टहासके विस्तारसे युक्त मध्यभागवाले मुखको देखकर "यह क्या है" इस प्रकार चकित होते हुए प्राणियोंको अभय देनेवाले तथा लीलासे चंचल कमलिनीकी समान कोमल जनकसुताके संगमें राजहंस वा सिंदूरकी समान लालवर्ण उदयाचल पर्वतके शिखरमें स्थितके ऊपर सूर्यकी तुल्य सूर्यकुलकेतु श्रीरामचन्द्रजी सबकी रक्षा करें ॥ १६ ॥

लंकामें कुंभकर्ण जब सोकर उठा तब मांसके पर्वतोंके समूहको निगलता गया और तीव्र मद्यको पीकरभी तृप्त न हुआ तब यह बोला कि-यदि मद्यके समुद्रसहित गंगा और यमुना हो तो उसकोभी पीजाऊँगा ॥ १७ ॥

अपने सेनादलमें रामचन्द्रजी इस प्रकार कहने लगे कि-पवनकुमार ! लंकाके शिखरोंतक जिसकी जंघा ऐसी क्या यह क्या कोई कल है ? यह सुनकर हनुमान्‌जीने कहा कि-नहीं महाराज ! यह तो कुंभकर्ण है ॥ १८ ॥

कुम्भकर्ण-(रावणके पास आकर) हे राजन् !

यद्यपि क्षितिपालानामाज्ञा सर्वत्रगा स्वयम् ।
तथापि शास्त्रदीपेन संचलन्त्यवनीश्वराः ॥ १९ ॥
(रामाय जानकी दीयतामित्यभिप्रायः)

रावणः-

इदं भ्रातृवचः श्रुत्वा तथेत्याह दशाननः ।
शास्त्रनिःसंशया वाचः सतां कस्य न वल्लभाः ॥ २० ॥

जानकीं न समर्पयामीत्यभिप्रायाद्रावणः-(सावज्ञम्)

उत्क्षिप्तस्फटिकाचलेन्द्रशिखरश्रेणीनिघृष्टाङ्गदै-
रेभिः पीनतरैः सुरासुरभयप्राप्तप्रतिष्ठैर्भुजैः ।
संग्रामे मम कुम्भकर्णविजयः किं त्वद्भुजाडम्बरः ।
प्रत्याशाशिथिलोऽस्म्यहं व्रज पुनः स्वापाय निद्रालयम् २१॥

कुम्भकर्णः-(भीममालम्ब्य)

राजन्मागा विषादं परिहर बलवद्विद्विषः शोकशल्यं
कल्याणान्याश्रयन्तामहमहमिकया नो भवन्तं जहामि ।

यद्यपि भूपालोंकी आज्ञा स्वयंही सर्वत्र मानी जाती है, तथापि राजाओंको शास्त्ररूपी दीपकके सहारेसे चलना चाहिये ॥ १९ ॥

(ऐसा कहनेमें यह अभिप्राय है कि-रामचन्द्रको जानकी दे दो)

रावण भाई कुंभकर्णके इस वचनको सुनकर दशग्रीव रावण बोला कि-हाँ हाँ ऐसाही है । सज्जनोंकी शास्त्रसे निश्चय की हुई वाणियें किसको प्यारी नहीं लगतीं ॥२०॥

जानकीको नहीं दूँगा इस आशयसे रावण-(अनादरके साथ)

उठाये हुए कैलासपर्वतके शिखरोंकी पंक्तियोंसे घिस गये हैं बाजूबन्द जिनके तथा देवता और राक्षसोंको भय देनेसे प्रतिष्ठा पानेवाली इन मेरी पुष्ट भुजाओंसेही संग्राममें विजय हो सकता है, हे कुम्भकर्ण! इनके समान तुम्हारी भुजाओंकी शक्तिही क्या है ? अब तुमसे मेरी सब आशायें ढीली पड़ गईं तुम अपने शयनागारमें जाकर फिर सुखसे सो रहो ॥ २१ ॥

कुम्भकर्ण-(भयानक आकृति बनाकर) हे राजन् ! तुम विषाद न करो बली शत्रुके शोकरूपी शूलको परित्याग कर दो और आनन्दमें मग्न रहो, पहिले मैं अकेलाही रणभूमिमें जाऊँगा, तुमसे अलग नहीं होऊँगा ! जिस समय मैं कुम्भ-

कः कालः को विधाता किमरिकुलभयं को यमः के च याम्याः
को रामः के कपीन्द्राश्चलति मयि रणे रोषिते कुम्भकर्णे ॥२२॥
रावणः-(सानन्दं) महाबलपराक्रमै राक्षसभटैः परिवृतो
रणप्राङ्गणंऽवतरतु वत्सः ।
कुम्भकर्णः-(साक्षेपं तथा कृत्वा)
अयि कपिकुलमल्लाः किं मुधा यात भीता
नहि जगति भवद्भिर्युद्ध्यते कुम्भकर्णः ।
अपि जलधरपोतो लेढि किं स्वल्पकुल्या-
मपि मशककुटुम्बं केसरी किं पिनष्टि ॥ २३ ॥
अपि च-नाहं वाली सुबाहुर्न खरत्रिशिरसौ दूषणस्ताटकाहं
नाहं सेतुः समुद्रे न च धनुरपि यत्त्र्यम्बकस्य त्वयात्तम् ।
रे रे राम प्रतापानलकवलमहाकालमूर्तिः किलाहं
वीराणां मौलिशल्यः समरभुविचरः संस्थितः कुम्भकर्णः ॥ २४ ॥

कर्ण क्रोध करके युद्धमें पहुंचूंगा उस समय मेरे सामने कालभी क्या है ? और शत्रुसमूहका तो भयही क्या ? यहभी क्या वस्तु है ? यमके दूत तो हैं ही क्या ? फिर रामचन्द्र और वानरसेनापतियोंसे तो डरनाही क्या है ? ॥ २२ ॥

रावण-(आनन्दित होकर) हे भाई ! अतिबलवान् और पराक्रमी शूर वीर राक्षसोंको साथ लेकर युद्धभूमिमें जाओ ॥

कुम्भकर्ण-(आक्षेपके साथ रावणके कहनेके अनुसार राक्षसवीरोंके साथ समरभूमिमें प्रवेश करके कहने लगा कि) हे वीर वानरो ! तुम वृथाही डरकर क्यों भागते हो, युद्धभूमिमें कुम्भकर्ण तुमसे युद्ध नहीं करेगा, क्या कहीं छोटेसे छोटाभी मेघ छोटीसी नदीको चाटता है ? (कदापि नहीं) और कहीं शेरभी मच्छरके झुंडोंको मसलता है ? (कभी नहीं) ॥ २३ ॥

औरभी-अरे ओ राम ! मैं वाली नहीं हूँ, न मैं सुबाहु हूं तथा खर त्रिशिराभी मैं नहीं हूँ, तथा न मैं दूषण और ताडका हूँ, सागरका पुलभी नहीं हूं, जिसको तुमने तोड डाला है वह शिवका धनुषभी मैं नहीं हूं । किन्तु तेरी प्रतापरूपी अग्निके भक्षण करनेको महाकालरूप मूर्तिवाला, वीर पुरुषोंके माथेको काटनेके निमित्त त्रिशूलरूप कुम्भकर्ण समरभूमिमें आकर उपस्थित हुआ हूं ॥ २४ ॥

(ततो गगनमुत्पत्य)

सुग्रीवं बाहुमूले प्लवगबलपतिं कण्ठदेशे भुजेन
क्षिप्त्वा निष्पीड्य गाढं रजनिचरपुरीं संदधानो जगाम ।
सानन्दं कुम्भकर्णस्तदनु कपिभटस्तस्य तूर्णं सकर्णं
घ्राणं जग्ध्वा जगाम स्वशिबिरमुदरं कूर्परेणाभिहत्य ॥ २५ ॥
निःश्वस्योत्सृज्य बाष्पं नयनकमलयोश्चात्मनो वारि दत्त्वा
कृत्वा लंकोपगूढं सकरुणमपुनर्भावि नीत्वा त्रिशूलम् ।
क्रोधान्धः कालमूर्तिः प्रलयहुतवहाङ्गारनेत्रो विकर्ण-
श्छिन्नघ्राणोऽवतीर्णः पुनरपि समरप्राङ्गणे कुम्भकर्णः ॥२६ ॥
तं दृष्ट्वा जीविताशं गिरिवरकुहरं त्रस्तचित्ताः कपीन्द्राः
केचित्पादान्तवातप्रचलितपवनान्दोलिताः खे चरन्ति ।
केचिद्दोर्दण्डचण्डभ्रमणनिपतिताः शोणितान्युद्गिरन्ति
प्राणान्केचित्प्रवीराःकथमपि दधति स्फीतफूत्कारभिन्नाः २७॥

(इसके अनन्तर आकाशमेंको उछलकर) वानरपति सुग्रीवको बगलमें दबोच-कर और फिर मूर्च्छित समझ भुजासे कण्ठमें पकडकर कुम्भकर्ण सीध बाँधे हुए आनन्दके साथ राक्षसपुरी लंकाको चल दिया तदनन्तर वानरवीर सुग्रीव उसके कान और नाकको काटकर तथा उसके पेटपर कौनीसे प्रहार करके तत्काल अपनी सेनाके लश्करमें चले गये ॥ २५ ॥

कुम्भकर्ण श्वास लेकर और अपने नेत्रकमलोंसे आँसुओंको वर्षाकर मानो आपही अपना जलदान करके तथा करुणाके साथ फिर दूसरी वार न होनेवाले लंकाके आलिङ्गनको करके त्रिशूल ले क्रोधसे अन्धा हुआ कालकीसी मूर्ति धारण करे प्रलयकी अग्निके अंगारोंकी समान लाल २ नेत्रोंवाला नाककटा और कानोंसे बूचा कुम्भकर्ण फिरभी युद्धभूमिमें आ पहुँचा ॥ २६ ॥

जीवित प्राणियोंका भक्षण करनेवाले, विकटरूप उस कुम्भकर्णको देखकर चित्तमें डरे हुए वानर पहाडोंकी गुफाओंमें घुस गये कितनेही उसके चरणोंकी अंगुलियोंसे चले हुए वेगवान् वायुसे उडकर आकाशमें चले गये और बहुतसे वानर प्रचण्ड भुजदण्डोंको घुमानेसे पृथ्वीमें गिरकर मुखसे लोहू उगलने लगे तथा कितनेही वानर लम्बी २ फुंकारोंसे विदीर्ण होकर बडी कठिनाईसे प्राण धारण कर-नेको समर्थ हुए ॥ २७ ॥

उत्क्षिप्य शूलमजयं त्रिपुरान्तकस्य
संहारकेतुमिव कोटितडित्प्रभाभिः ।
घोरं ज्वलन्तमुरसि क्षिपति स्म रक्ष-
स्तारापतेस्तदिषुणा रघुणा निरस्तम् ॥ २८॥

क्रोधाग्नेर्जाठराग्नेः कपिशिबिरगतो मुद्गरं व्याददानो
वक्रे निक्षिप्य कोटिं कवलयति भटानुत्कटान्कुंभकर्णः ।
कांश्चित्पद्भ्यां पिनष्टि श्वसनसहचरा वानराः कर्णरन्ध्रा-
न्निर्गच्छन्त्येक एतान्पुनरपि दशनैश्चर्वितानत्ति घोरम् ॥ २९॥

सव्येन सान्द्रशिबिरं स्वकरेण धुन्व-
न्व्यात्ताननस्य कटकं तत उत्तरेण ।
सुग्रीवमेव कपिवीरवरेषु सत्सु
जग्राह कोपकलितो युधि कुम्भकर्णः ॥ ३० ॥

तातं विलोक्य विषमस्थमथांगदस्तं
गारुत्मतेन भुवि पातयति स्म शत्रुम् ।

राक्षस कुम्भकर्णने अजेय और करोडों बिजलियोंकी प्रभाओंसे बडे देदीप्यमान और शिवजीके प्रलयके त्रिशूलकी समान एक त्रिशूलको उठाकर सुग्रीवके वक्षःस्थलपर मारा उसी समय रामचन्द्रजीने उस त्रिशूलको अपने बाणसे काट डाला ॥ २८ ॥

क्रोधाग्निके कारण मुखकी ज्वाला प्रबल होनेपर वह कुम्भकर्ण मुद्गरको ताने हुए वानरोंके कटकमें गया और करोडों उत्कट योद्धाओंको मुखमें डालकर चबाने लगा और किन्हीं वानरोंको पैरोंसे कुचलने लगा उस समय कितनेही वानर साँसके साथ कानोंके छिद्रोंसे होकर बाहरको निकलने लगे, तब इन निकले हुओंको फिरभी पकड २ कर बडी बेदर्दीसे दाँतोंसे चाब चाबकर खाने लगा ॥ २९ ॥

तदनन्तर उस कुम्भकर्णने अपने बायें हाथसे सघन सेनाको तितर बितर करते हुए दायें हाथसे क्रोधमें भरकर समरभूमिमें बडे २ वीर वानरोंके विद्यमान होते हुएभी सुग्रीवकोही पकडा क्योंकि सुग्रीवने नाक कान काटे थे ॥ ३० ॥

अङ्गदने अपने चाचा सुग्रीवको बडे संकटमें पडा देख गरुडपाश चलाया और उससे शत्रु कुम्भकर्णको पृथ्वीपर गिरादिया; उस समय ज्योंही छूटे हुए सुग्रीवको

मुक्तोऽपि निःश्वसिति यावदसौ कपीन्द्र-
स्तावद्बबन्ध नरसिंहपदाङ्गदं सः ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा नीलस्तदुभयमपि ग्रस्तमाक्रम्य रक्षः-
स्कंधे मौलौ श्रवणकुहरे घ्राणवक्त्रोदरेषु ।
तीव्रज्वालो दहति कुपितः स्वेन रूपेण वीरः
क्रव्यादोऽभूत्तदनु विकलः प्रोत्थितौ वानरेन्द्रौ ॥ ३२ ॥

लंकाशिरःस्थो रावणः-

लंकेश्वरस्तमवलोक्य रणे ज्वलन्तं
कादम्बिनीसहचरामृतवारिधाराम् ।
तूर्णं मुमोच तदुपर्युपलब्धसंज्ञो
भोक्तुं कृतान्त इव नीलनलौ स दध्यौ ॥ ३३ ॥

जाम्बवान्-

दम्भोलिं कुम्भकर्णं गिरिमिव तरसा पातयञ्जानुबन्धं
कण्ठं गाढं विरच्य स्वभुजगुरुमदं जाम्बवानुग्रवेषः ।

जरा चेतना हुई इतनेमेंही वह कुम्भकर्ण फिर बैठा हो गया और उसने नृसिंहपाशसे अङ्गदकोभी बांध लिया ॥ ३१ ॥

सुग्रीव और अङ्गद दोनोंको बँधा हुआ देखकर नीलको क्रोध आ गया उसने कुम्भकर्णके ऊपर आक्रमण किया और वह अपने अग्निरूपकी प्रचण्ड लपटोंसे राक्षस कुम्भकर्णके कन्धे शिर कानोंके छिद्र, और नासिकाके छिद्र, मुख तथा पेटको भस्म करने लगा, तब राक्षस कुम्भकर्ण बडा व्याकुल हुआ और वानरराज सुग्रीव तथा अंगद उठकर खडे हो गये ॥ ३२ ॥

रावण-(लंकाके ऊपर बैठा हुआ) रणभूमिमें उस कुम्भकर्णको जलते हुए देखकर लंकेश्वरने तत्काल मेघमालाओं सहित अमृतरूपी जलकी धाराओंको उसके ऊपर छोडा, तब तो चेतनताको प्राप्त हुआ वह कुम्भकर्ण साक्षात् कालकी समान नील और नलको खानेके लिये सोचने लगा ॥ ३३ ॥

जाम्बवान्-(अति कोपके कारण उग्रवेषधारी जाम्बवान्) ने बडी शीघ्रताके साथ अपनी जंघाओंके प्रहारसे उस पर्वत और वज्रसमान कुंभकर्णको गिरा दिया तथा जिसको अपनी भुजाओंका बडा भारी मद है ऐसे उस जाम्बवान्ने जोरसे

निर्मुक्तौ तावभूतामभवदथ मरुत्पुष्पवृष्टिस्तदङ्गे
गुल्फाघातेन रोषाद्रजनिचरवरस्तान्निरस्योपतस्थौ ॥ ३४ ॥

आलक्षिता रघुवरेण सलक्ष्मणेन
कालान्तकादिव रिपोः परिशङ्कितेन ।
स्थानं जगाम हनुमान्समरेऽवतीर्य
माहेश उग्रनरसिंह इवारुणाक्षः ॥ ३५ ॥

मैनाको मेरुशृङ्गस्थित इव हनुमत्पाणिपद्मे नगेन्द्रः
कल्पान्ते मन्दराग्रेऽजन इव समरे मुद्गरः कुम्भकर्णे ।
अद्रिं क्रव्यादवीरः प्रहितमनिलजेनाच्छिनन्मुद्गरेण
लांगूलेनाञ्जनेयोऽद्भुतजनितरुषा मुद्गरं द्राक् चकर्ष ॥ ३६ ॥

रामः ।

अत्रान्तरे रघुपतिः शरयुग्ममैन्द्रं
द्राक्कुम्भकर्णनिधनाय रणे मुमोच ।
भित्त्वा बिभेद हृदयं धरणीमथैको
मूर्धानमुद्धतमखण्डयदस्य चान्यः ॥ ३७ ॥

गर्दन पकड ली, वह नील और नल दोनों छूट गये जाम्बवान्के ऊपर उस समय देवताओंने पुष्पवर्षा करी इतनेमेंही कुम्भकर्णने क्रोधमें भरकर एक लात मारकर जाम्बवान्को ढकेल दिया और आप उठकर खडा हो गया ॥ ३४ ॥

प्रलयकर्त्ता यमराजकी समान वानरसेनाको उजाडते हुए शत्रुकी ओरसे शंकितसे हुए लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीने रुद्रावतार हनुमान्जीकी ओरको देखा वह महावीर उसी समय उग्र नृसिंहकी समान लाल २ नेत्र किये युद्ध भूमिमें आगये ॥ ३५ ॥

उस समय हनुमान्जीके करकमलमें स्थित पर्वत मेरुपर्वतपर स्थित हुए मैनाककी सदृश शोभाको प्राप्त हुआ, और बडे २ समर्थ वीरोंकी समाप्ति जिसमें हो ऐसे उस युद्धमें कुम्भकर्णके हाथमेंका मुद्गर मन्दराचलपर भगवान्की मूर्तिकी समान शोभाको प्राप्त हुआ, उस समय अंजनीकुमारके फेंके हुए पर्वतको राक्षस वीर कुम्भकर्णने अपने मुद्गरसे टुकडे २ कर डाला, तब तो हनुमान्जीने बडे क्रोधमें भर उसी समय अपनी पूँछसे मुद्गरको खींच लिया ॥ ३६ ॥

इतनेमेंही श्रीरामने इन्द्रके दिये हुए दो बाणोंको झटपट रणमें कुम्भकर्णके

हनुमान्-

उद्यन्मरुत्तनयचण्डचपेटघाता-
न्मूर्धा पपात तुहिने रजनीचरस्य ।
मग्नो भविष्यति यदम्भसि भीमसेनो
बभ्राम पुच्छनिकृतो गगने कबन्धः ॥ ३८ ॥

(नेपथ्ये)

देवाः सर्वे विमानान्यपनयत रवेः स्यन्दनो यातु दूरं
रे रे शाखामृगेन्द्राः परिहरत रणप्राङ्गणं राक्षसाश्च ।
वज्रत्रस्ताञ्जनाद्रिप्रतिनिधिरवधिः सर्वविस्मापकानां
लंकातङ्कैकहेतुर्निपतति नभसः कौम्भकर्णः कबन्धः ॥ ३९ ॥

(मृतः कुम्भकर्णः)

उत्क्रान्तोऽपि स्वदेहात्प्रवरसुरवधूदोर्भिराकृष्यमाणः
प्राणत्राणाय भर्तुः पुनरपि समरापेक्षया नारुरोह ।
संगीतैर्नारदाद्यैर्मृदुमुरजरवैः स्तूयमानो विमानं
वीरः संग्रामधीरः शिव शिव स कथं वर्ण्यते कुम्भकर्णः ॥ ४० ॥

मारनेके लिये छोडा, उनमेंसे एक बाण कुम्भकर्णके हृदयको फोडकर पृथिवीमें घुस गया और दूसरे बाणने इस कुम्भकर्णके उद्धत मूर्धाको फोडकर खोपडीके टुकडे २ कर दिये ॥ ३७ ॥

उद्यत हुए पवनकुमारके प्रचण्ड चपेटेकी चोटसे कुम्भकर्णका शिर हिमालयमें जाकर पडा, जिसके जलमें भीमसेन गोता खायगा और पूँछसे कटा हुआ धड आकाशमें जाकर घूमने लगा ॥ ३८ ॥

(नेपथ्यमें) अरे देवताओ तुम सब अपने विमानोंको हटा लो, सूर्यका रथ दूर हट जाय, अरे वानरो ! और राक्षसो ! तुमभी रणभूमिको छोडकर हट जाओ, वज्रसे घबडाये हुए अंजनाद्रिकी समान सकल आश्चर्योंकी सीमा, लंकाके अशकुनका अद्वितीय कारण कुंभकर्णका धड आकाशसे गिरता है ॥ ३९ ॥

अपने शरीरसे प्राणोंके अलग होनेपर जब कुंभकर्णको विमानपर बैठानेके लिये सुन्दर देवांगना अपने भुजाओंसे खींचने लगीं सुन्दर गान करनेवाले नारदादि कोमल मुरज आदि बाजे बजाके स्तुति करने लगे, तब भी अपने स्वामी रावणके

लङ्काशिखरस्थो रावणः–(सविस्मयम्)

मरुच्चन्द्रादित्याः शतमुखमुखास्ते क्रतुभुजः
पुरद्वारे यस्याः समयमुपसर्पन्त्यनुदिनम् ।
प्रकोपव्याकम्पाधरतटपुटैर्वानरभटैः
समाक्रान्ता सेयं शिव शिव दशग्रीवनगरी ॥ ४१ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके कुम्भकर्णवधो नामैकादशोऽङ्कः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽङ्कः ।

रावणः–(सक्रोधं) तूर्णं पूर्णकटकं पुत्रमिन्द्रजितं दुष्करसमरयज्ञे अध्वर्युं वृणोति स्म इन्द्रजित्सत्वरं कुम्भकर्णवधामर्षमूर्च्छितः सीतापतिवधे बद्धलक्ष्यः समरचत्वरेऽवतीर्णः ।

इतो लक्ष्मणो धनुर्गुणटणत्कारैर्धरणिगगनान्तरमापूरयन्कोपानलज्वालावलीभिः सलङ्काधिपां लङ्कां कवलयन्घोरसमरनासीरेऽवतरति स्म ।

प्राणोंकी रक्षाके लिये विमानपर चढनेकी इच्छा न की, हे शिव ! हे शिव ! समरभूमि धीरज रखनेवाले ऐसे वीर कुंभकर्णका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ ४० ॥

लंकाके शिखरपर बैठा हुआ रावण (विस्मयके साथ)

पवन, चन्द्रमा, सूर्य, और इन्द्र आदि देवता जिस नगरीके द्वारपर प्रतिदिन भयभीत हुए टहला करते हैं; हे शिव ! हे शिव ! वही मुझ दशग्रीवकी इस लंका पुरीको जिनके ओठ और नथने मारे क्रोधके कंपित हो रहे हैं ऐसे वानर वीरोंने घेर लिया ॥ ४१ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां कुंभकर्णवधो नामैकादशोऽङ्कः ॥ ११ ॥

रावणने (क्रोधमें भरकर) उसी समय बडी भारी फौजके साथ पुत्र मेघनादको घोर युद्धरूपी यज्ञमें यज्ञकर्त्ता बनाकर भेजा, मेघनाद शीघ्र कुम्भकर्णके वधके कारण क्रोध करके आपेसे बाहर हो सीतापति रामका वध करनेके लिये निशाना ताकता हुआ रणभूमिमें आया ॥

इधर लक्ष्मणजी धनुषके रोदेकी टंकारोंसे पृथ्वी और आकाशके मध्यभागको पूर्ण करते और क्रोधाग्निकी अनेकों लपटोंसे रावणसहित लंकाको निगलते हुएसे सेनाके आगे आये ॥

रावणिः-(लक्ष्मणमवलोक्य)

नाहं सौमित्रिकोपस्य जानेऽल्पमपि कारणम् ।
नूनं चञ्चलबुद्धीनां स्नेहकोपावकारणौ ॥ १ ॥

अपिच-

क्षुद्राः संत्रासमेते विजहत हरयो भिन्नशक्रेभकुम्भा
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः ।
सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमसि नहि रुषां नन्वहं मेघनादः
किंचिद्भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ॥ २ ॥

सुग्रीवमारुतिनलाङ्गदनीलमुख्या
बाष्पान्धकारजलदान्तरितं प्रचण्डम् ।
तं रावणिं जलदमण्डलमास्थितं नो
पश्यन्ति तान्प्रहरति स्म स घोरबाणैः ॥ ३ ॥

मायारथं समधिरुह्य नभःस्थलस्थो
गम्भीरकालजलदध्वनिरुज्जगर्ज ।

मेघनाद-(लक्ष्मणको देखकर) यह जो लक्ष्मण मेरे ऊपर कुपित हो रहा है इसका तनिकभी कारण मैं नहीं जानता निःसंदेह ऐसे चंचलबुद्धिवालोंके विनाही कारण स्नेह और कोप हो जाते हैं ॥ १ ॥

(औरभी) यह छोटे २ वानर भयको छोड दें, क्योंकि-इन्द्रके ऐरावत हाथीके गण्डस्थलोंके फोडनेवाले मेरे बाण तुम्हारे शरीरोंपर गिरते परम लज्जितसे होते हैं, हे लक्ष्मण! तुमभी आराम करो, क्योंकि तुम मेरे क्रोधके पात्र नहीं हो मैं मेघनाद हूँ और कुछेक भ्रूविलासहीसे समुद्रका पुल बांधनेवाले रामको ढूंढता हूं ॥ २ ॥

सुग्रीव, पवनकुमार, नल, अङ्गद और नील आदि वानरोंने कुहर और अन्धकार-युक्त मेघमण्डसे छिपे हुए उस प्रचण्ड रावणकुमार मेघनादको नहीं देख पाया, और वह मेघमण्डलकी आडमें स्थित हो घोर बाणोंसे इन सबके ऊपर प्रहार करने लगा ॥ ३ ॥

आकाशमें स्थित वह मेघनाद मायाके रचे हुए रथपर चढकर प्रलयकालके मेघकी गर्जनाकी समान बडी गम्भीरताके साथ दहाडने लगा और आश्चर्यकी बात है कि

बाणैरपातयदहो फणिपाशबद्धै-
स्तौ मेरुमन्दरगिरी पविनेव शक्रः ॥ ४ ॥

अत्रान्तरे पूर्ववैरमनुस्मरन्ती चक्रवाकी सरोवरस्था-

शशाप यो मे दयितं स रामः ।
सलक्ष्मणो रावणिबाणजालैः ।
रणे हतोऽयं मुदमुद्वहन्ती
चन्द्रोदये नृत्यति चक्रवाकी ॥ ५ ॥

सरमा-

श्रुत्वा हतिं दशरथात्मजयोर्विमान-
मारुह्य पुष्पकमवाप्य दशाननस्य ।
आज्ञां निनाय सरमा जनकस्य पुत्रीं
सीताविदीर्णहृदयासि दिवं गतासि ॥ ६ ॥

जानकी-

किं भार्गवच्यवनगौतमकाश्यपानां
वाणी वसिष्ठमुनिलोमशकौशिकानाम् ।
जाताऽनृताप्यहह आलपिता त्वया मे
स्यान्मग्नचूचुककुचा सधवेति राम ॥ ७ ॥

जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे मेरु और मन्दराचलको गिरा दिया था मेघनादने नागपाश-रूप बाणोंसे राम और लक्ष्मण दोनोंको बांध लिया ॥ ४ ॥

इसी अवसरमें सरोवरमें स्थित चकवी (पहिले वैरको स्मरण करती हुई कहने लगी) जिसने मेरे पतिको शाप दिया था वह राम लक्ष्मणसहित मेघनादके बाण-जालसे युद्धमें मारा गया ऐसा कहके आनन्दित होकर चकवी चन्द्रोदयमेंभी नृत्य करने लगी ॥ ५ ॥

दशरथकुमारोंके बन्धनको सुनकर और दशाननकी आज्ञा पाकर सीताके कारण जिसका हृदय विदीर्ण हो रहा है ऐसी सरमा जनककुमारीको पुष्पकविमानमें बैठा-कर युद्धभूमिमें ले गई ॥ ६ ॥

जानकी-क्या भार्गव, च्यवन, गौतम, काश्यप, वशिष्ठ, मुनि लोमश और विश्वामित्रजीकी कही वे वाणियें झूंठी हो गईं, हा ! हा ! राम उन्होंने मुझसे कहा

हा राघव प्रियतम स्फुरतीह वामो
बाहुस्तथा नयनमप्यनृतं किमेतत् ।
नाद्यापि यन्मधुरनिर्मलदृष्टिपातैः
संभावयस्यपि विलासगिरा भुजाभ्याम् ॥ ८ ॥

(उक्तं च यतः)

संमानितापि न तथा मुदमभ्युपैति
मात्रानुजेन जनकेन तथाग्रजेन ।
आश्वासितापि रमणी रमणेन तूर्णं
प्रेम्णा यथा मधुरनिर्मलदृष्टिपातैः ॥ ९ ॥
प्राणेश्वरः प्रतिगिरं न ददाति रामो
हा वत्स लक्ष्मण ममापनयेन रुष्टः ।
मद्वत्सलस्त्वमपि नोत्तरमाददासि
भ्रान्त्वा भुवं मम कृतेऽथ दिवं गतो वा ॥ १० ॥

था कि–हे जानकी ! तेरा कुचाग्रभाग मग्न हो रहा है, इस कारण तू सदा सौभाग्यवती रहैगी ॥ ७ ॥

हा राघव ! हा परम प्रिय ! मेरी बाँई भुजा और नेत्र फडक रहे हैं, क्या यह सब झूँठाही है, जो कि तुम अभीतक मुझको मधुर निर्मल दृष्टिपात विलासकी वाणी और भुजाओंसे सुख नहीं देते हो ॥ ८ ॥

(कहा भी है कि) स्त्री अपनी माता, छोटे भाई, पिता, और बडे भाई इन सबके द्वारा खूब आदर की हुई भी उतना आनन्द नहीं पाती कि–जैसा पतिके द्वारा प्रेमपूर्वक समझाई हुई और मधुर निर्मल दृष्टिपातोंसे प्रसन्न की हुई आनन्द पाती है ॥ ९ ॥

हे प्राणेश्वर ! राम ! उत्तर नहीं देते, हा ! वत्स लक्ष्मण ! क्या तुम मेरे अन्यायसे रुष्ट हो गये ? तुम तो मुझसे बडा प्रेम करते थे, तुमभी मुझे उत्तर क्यों नहीं देते अथवा क्या इस सकल भूमण्डलमें घूमकर अब मेरेही लिये स्वर्गमें ढूंढनेको गये हो ? ॥ १० ॥

स्वर्गादिमौ झटिति मानवलोकयन्तौ
न ब्रह्मलोकमधिगच्छत एव तावत् ।
प्राणा दिवं व्रजत साधुगिरा मुमोच
श्वासानिलं जनकजा सह सङ्गरेण ॥ ११ ॥

समरादपहृतं विमानं सरमया रावणभयादित्यभिप्रायः ।

(अत्र वैकुण्ठाद्गरुडः)

हाहाकारं निशम्य त्रिभुवनविदितं रावणेः कर्म घोरं
क्रोधाग्नेर्धूमधारीदलितरिपुकुलं त्रासयन्राक्षसेन्द्रम् ।
पक्षाघातप्रचण्डप्रचलितपवनध्वस्तशैलेन्द्रपातैः
संप्राप्तो वैनतेयः स्रवदमृतरसो जीवयामास रामम् ॥ १२ ॥

रावणिः—(सभयं रणसंकटमुपलभ्य सप्रपञ्चम्)

पापो विरच्य समरे जनकस्य पुत्रीं
हा राम राम रमणेति गिरं गिरन्तीम् ।
खड्गेन पश्यत वदन्निति रे प्रवीरा
मायामयीं शिवशिवेन्द्राजिदाजघान ॥ १३ ॥

रे प्राणो ! दोनों मुझे न पाकर तत्काल स्वर्गसे ब्रह्मलोकको न चलदें इतने तुमभी स्वर्गमें पहुंच जाओ, इस प्रकार जानकीने प्यारी वाणी कहकर रणभूमिके साथही अपनी श्वासवायुको छोडा ॥ ११ ॥

अर्थात् सरमाने रावणके भयसे विमानको युद्धभूमिमेंसे हटा लिया ॥

(इसी अवसरमें वैकुण्ठसे गरुडजी) त्रिलोकीमें प्रसिद्ध मेघनादके घोर कर्म और हाहाकारको सुनकर क्रोधाग्निके परम धुएँसे नष्ट हुआ है शत्रुकुल जिनका ऐसे, तथा राक्षसराज रावणको भयभीत करते हुए एवं परोंके चलानेसे चलते हुए प्रचण्डपवनसे पर्वतोंको तोडते और गिराते हुए गरुडजी आ पहुँचे और अमृतरस चुआकर श्रीरामचन्द्रजीको सचेत कर दिया ॥ १२ ॥

मेघनाद–(भयभीत हुआ) संग्रामके संकटको प्राप्त होकर (माया फैलाता हुआ) हा ! राम ! हा रमण ! ऐसी वाणीका उच्चारण करती हुई जानकीको रणभूमिमें मायासे रचकर अरे वीरो ! देखो इस प्रकार कहते हुए उस पापी मेघनादने शिव ! शिव ! तलवारसे उस मायाकी रचा हुई सीताका वध कर डाला ॥ १३ ॥

द्विधा कृतां तां पुनराददानो मायारथस्थोऽम्बरवर्त्मना च ।
ब्रह्मोपदेशात्स निकुम्भिलाद्रेर्न्यग्रोधमूलावटमाजगाम ॥ १४ ॥

(समरचत्वरे) रामः—

दृष्ट्वा मायाजनकतनयाखण्डनं रामचन्द्रो
गुर्वीमुर्वीतलमुपगतो दीर्घमासाद्य मूर्च्छाम् ।
तत्पादाग्रे पुनरनुजनिश्चेतनां प्राप्य रामं
कृत्वोत्संगे स्मरसि न गिरं व्याहरन्नित्यरोदीत् ॥ १५ ॥

लक्ष्मणः—

सिंचत्येनं विकचनलिनीगर्भनिर्मुक्तवारा
धारासारैर्मलयजरसै रामधर्मोऽप्रमाणम् ।
यस्मादेतां त्वमपि पदवीमास्थितो ब्रह्मशापा-
दित्यालापैर्विलपति दृशा लक्ष्मणश्चक्रवाक्याः ॥ १६ ॥

सा यथा—

एकेनाक्ष्णा प्रविततरुषा वीक्षते व्योमसंस्थं
भानोर्बिम्बं सजलगलितेनापरेणात्मकान्तम् ।

फिर दो टुकड की हुई उस मायाकी सीताको लेकर मायाके रथमें बैठ ब्रह्माके कहनेसे आकाशमार्गके द्वारा निकुंभिल पर्वतके ऊपर बडके वृक्षकी जडमें बने हुए कुण्डमें अनुष्ठान करनेको गया ॥ १४ ॥

(समरभूमिमें रामचन्द्र) मायासे रची हुई जानकीके टुकडे २ देखकर रामचन्द्रजी बडी भारी मूर्च्छाको पाकर पृथ्वीमें गिर पडे, तब उनके चरणोंके समीप लक्ष्मणजी धीरता और चेतनाको धारे हुए रामचन्द्रको गोदीमें बैठाकर क्या आप आप्तवाक्योंको स्मरण नहीं करते (कि सीताका वध करनेवाला कोई नहीं है)॥१५॥

लक्ष्मण—हे भगवन् ! यह मूर्च्छा धर्ममें बाधक नहीं है, आपसे धार्मिककोभी जो ऐसी मूर्च्छा हुई इसका कारण परशुरामजीका शाप है इस प्रकार खिली हुई कमलिनीके बीचसे निकलते हुए जलकी समान और मलयाचलके चन्दनके जलकी सदृश शीतल सम्भाषणोंसे रामचन्द्रको सींचकर शीतल करते हुए लक्ष्मणजी चक्रवीकी दृष्टिकी समान विलापभी करने लगे ॥ १६ ॥

जिस प्रकारसे चक्रवाकी क्रोधसे परिपूर्ण एक नेत्रसे आकाशमण्डलमें स्थित

अह्नश्छेदे दयितविरहाशंकिनी चक्रवाकी ।
द्वौ संकीर्णौ विसृजति रसौ रौद्रकारुण्यसंज्ञौ ॥ १७ ॥

तत्र निकुम्भिलाद्रौ न्यग्रोधमूलेऽवटे

रावणिः—(सत्वरम्)

कुण्डे विभीतकसमिद्भिरथार्धचन्द्रे
शक्रेभकुम्भदलनः पलमाजुहाव ।

हनूमान्—

शत्रुंजये रथवरेऽर्धसमुद्गतेऽग्रे-
र्यज्ञं बभञ्ज तरसा हनुमानुपेत्य ॥ १८ ॥

लक्ष्मणः—

रणप्राङ्गणे शनैश्वरादाप्य दाशरथेनार्पितं संहारास्त्रमनुस्मृत्य सानन्दं शोकमपहाय रे रे मायारथारूढप्रौढबाहुशालिन्मेघनाद मायां विभिद्य त्वां यमलोकं प्रस्थापयामि पश्य ।

दोःस्तंभास्फालकेलिस्फुटविकटरवध्वस्तघोरान्धकारः
संहारास्त्रं नियोज्य स्वधनुषि धरणीं पाणिनाहत्य वीरः ।

सूर्यके मण्डलको देखती है और आँसुओंसे परिपूर्ण दूसरे नेत्रसे अपने पतिको देखती है इस प्रकार सायंकालके समय अपने पतिके वियोगकी शंका करनेवाली चकवी रौद्र और करुणा इन दोनों मिले हुए रसोंको प्रकाशित करती है ॥ १७ ॥

इधर निकुम्भिल पर्वतके ऊपर बडके वृक्षकी जडमें कुण्डके समीप मेघनाद (शीघ्रतासे) इसके अनन्तर इन्द्रके हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाला मेघनाद अर्धचन्द्राकार कुण्डमें बहेडेकी लकडियोंके साथ अपने शरीरके माँसको हवन करने लगा (हनूमान्) इतनेमेंही हनूमान्जीने आकर उस शत्रुजीत रथियोंमें श्रेष्ठ मेघनादके अग्निमें आधाही यज्ञ करने पर बलात्कारसे यज्ञको विध्वंस कर डाला॥ १८॥

(युद्धभूमिमें लक्ष्मणजी) शनैश्वरसे पाकर दशरथके दिये हुए संहारास्त्रको स्मरण करके आनन्दित हो शोकको त्यागकर, कहने लगे कि—अरे नीच ! मायासे रचित रथमें स्थित होकर भुजाओंका घमण्ड दिखानेवाले मेघनाद ! अभी मैं तेरी मायाको काटकर तुझे यमलोकको भेजता हूँ, देख ॥

भुजदण्डोंके ताडनकी क्रीडासे प्रकट होते हुए विकट शब्दसे जिन्होंने बडा

क्रोधान्धो रावणस्य ज्वलदनलशिखामुद्गिरन्पाणियुग्मे
स्थित्वा चिक्षेप सौमित्रिरथ दृढशिरो मेघनादस्य सादि ॥ १९ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके मेघनादवधो नाम
द्वादशोऽङ्कः समाप्तः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽङ्कः ।

रावणः—(सक्रोधम्)

लङ्केश्वरः सुतवधारुणवक्रचक्र-
स्तत्रैकवीरनिधनां क्षिपति स्म शक्तिम् ।
सौमित्रिवक्षसि रुचार्धपथे ज्वलन्ती
क्षिप्ताम्बुधौ हनुमता तरसा गृहीत्वा ॥ १ ॥

रावणः—(शक्तिग्रहणमवलोकय सक्रोधं ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतः)

ब्रह्मा—(सभयं नारदं सस्मार)

नारदः—(प्रविश्य) तात किमिति स्मृतोऽहम् ॥

अन्धकार नष्ट किया है, अतुलबली, क्रोधसे उन्मत्त, लक्ष्मणजीने संहारकारक अस्त्रको अपने धनुषपर चढाकर और पृथ्वीको हाथसे ताडन करके जलते हुए अग्निकी लपटोंको फैलाते हुए मेघनादके दृढ और मुकुटसहित मस्तकको काटकर रावणके हाथोंमें फेंक दिया ॥ १९ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां मेघनादवधो नाम
द्वादशोऽङ्कः समाप्तः ॥ १२ ॥

रावण—(क्रोधके साथ) मेघनादके मरनेसे लाल २ नेत्र और मुखमण्डलवाले लंकाधिपति रावणने उस समय एक वीरनाशिनी शक्तिको फेंका वह शक्ति अपने प्रताप लक्ष्मणजीके वक्षःस्थलके वेधनेको चली, तब हनुमान्जीने बीचमेंसेही उस प्रज्वलित शक्तिको ग्रहण करके समुद्रमें फेंक दिया ॥ १ ॥

रावण (शक्तिको पकडी जाती हुई देखकर क्रोधसे ब्रह्माके मारनेको उद्यत हुआ) तब ब्रह्माजीने (भयभीत होकर नारदजीको स्मरण किया) ॥

नारदजी—(आनकर) पिताजी ! आपने मुझे क्यों याद किया ? ।

ब्रह्मा–वत्स ! यावन्मारुतिः समरभूमौ तावदेकवीरघातिनीशक्तिर्लक्ष्मणं न भिनत्ति । तस्मिन्पुनरभिन्ने लंकेश्वरो मां नितरां हनिष्यतीति मत्वा समरतः पवनपुत्रः स्थानान्तरं नेयः ॥

नारदः–यदाज्ञापयति तात इति (निष्क्रम्य)

द्राङ् नारदोऽथ पितृभङ्गभयादनैषी-
त्स्थानान्तरं समरतः पवनस्य सूनुम् ।
लंकापतेर्दृढचपेटभवत्प्रहारा–
ज्जग्राह रामरिपुरत्र विधेस्तु शक्तिम् ॥ २ ॥

रावणः–

दृष्ट्वा शक्तिग्रहणमधिकं राक्षसेन्द्रः कृतान्त-
क्रोधाध्मातो ज्वलितहृदयाग्निस्फुलिङ्गोग्रवेषः ।
तामेव स्म क्षिपति निधने लक्ष्मणस्योग्रमन्त्रै-
र्भित्वा वक्षःस्थलमपि गता भूतलं कूर्मराजम् ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी–हे पुत्र ! जबतक ये हनुमान्जी रणभूमिमें हैं तबतक यह एकवीरघातिनी शक्ति लक्ष्मणको भेदन नहीं कर सकेगी और लक्ष्मणपर प्रहार न होनेसे रावण मुझे अवश्यही अन्यन्त दुःख देगा, इस कारण महावीरजीको रणभूमिसे अलग दूसरे स्थानमें ले जाना चाहिये ॥

नारदजी–पिताजीकी जो आज्ञा (ऐसा कहकर निकलकर)

इसके अनन्तर लंकापति रावणके कठोर चपेटेकी चोटसे कष्ट होगा इस भयसे नारद शीघ्रही पवनतनय हनुमान्जीको दूसरे स्थानपर ले गये और इधर रावणने ब्रह्माकी शक्ति उठाई ॥ २ ॥

अपनी छोडी हुई शक्तिको हनुमान्जीके द्वारा पकडी हुई देखकर यमराजकी समान अत्यन्त क्रोधसे भुने हुए और प्रदीप्त हृदयाग्निकी चिनगारियोंसे भयानक वेषवाले राक्षसराज उस रावणने लक्ष्मणजीको मारनेके लिये तीव्र मन्त्रोंके द्वारा उसी शक्तिको फेंका, वह शक्ति लक्ष्मणजीके हृदय और पृथिवीको भेदकर कच्छपराजके पास जा पहुँची ॥ ३ ॥

शक्तिः प्रौढोग्रतेजःप्रलयसमुदिताद्रावणात्कोपमाना-
द्गर्जन्ती दीपयन्ती ज्वलितदशदिशो लक्ष्मणं वेधयन्ती ।
हाहाकारप्रलापं सकलजनभवं देवदैत्येन्द्रकम्पं
ब्रह्माद्यैः स्तूयमाना भुजगपतिपुरं कारयन्ती जगाम ॥ ४ ॥

(अत्रान्तरे स्थानान्तरादागत्य हनुमता)

पश्चात्तापगते विभीषणबले क्षीणे प्लवङ्गेश्वरे
मूढे जाम्बवति प्लवङ्गमगणेऽसंभूय भूयःस्थिते ।
शक्तिप्रौढमहाप्रहारविधुरे मूर्च्छागते लक्ष्मणे
हा रामे विलपत्यहो हनुमता प्रोक्तं स्थिरैः स्थीयताम् ॥ ५ ॥

अथ विभीषणः—रात्रौ ज्वलदुल्मुकं करे कृत्वा शिविरं पर्य्यटन् प्रौढशक्तिज्वालावलीतान् वानरान् पश्यति स्म को जीवति न वेति तत्र जांबवन्तमेवापश्यदुपविष्टं मूर्च्छारहितं नान्यम् ।

प्रौढ और उग्र तेजवाले वीरोंके नाशके निमित्त प्रकट हुई, गर्जना करती हुई और प्रकाशमान तथा दशों दिशाओंको जलाती हुई लक्ष्मणजीको छेदनकर और समस्त प्राणियोंमें फैलते हुए हाहाकारको उत्पन्न कर एवं देवता तथा राक्षसोंको कम्पायमान करती हुई एवं ब्रह्मादिकोंसे स्तुति की हुई वह शक्ति क्रोधमें हुए रावणके पाससे छूटकर नागलोकको चली गई ॥ ४ ॥

जब विभीषणकी सेना पश्चात्ताप कर रही थी सुग्रीव दुर्बल हो गये थे, जाम्बवान् जडकी तुल्य हो गये थे, वानर लोग छिपकर खडे हो गये थे, शक्तिके महाघोर प्रहारसे व्याकुल हो लक्ष्मणजी जब मूर्च्छाको प्राप्त हो गये थे और हाय ! हाय ! करके रामचन्द्रजी विलाप कर रहे थे, इसी समय महावीरजी दूसरे स्थानसे आनकर कहने लगे कि—सबको धैर्य रखकर स्थित होना चाहिये ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर विभीषण—रात्रिमें बलती हुई मसाल हाथमें लेकर लश्करमें ढूँढने लगे; महाशक्तिकी ज्वालाओंकी पंक्तियोंसे जलते हुए वानरोंको देखने लगे कि—कोई जीता है या नहीं, उस समय उन्होंने मूर्च्छारहित बैठे हुए जाम्बवन्तको देखा और किसीको नहीं ॥

जाम्बवान्–(विभीषणं प्रति)

अञ्जनी सुप्रजा येन मातरिश्वा तु राक्षस ।
हनूमान्वानरश्रेष्ठः कामं जीवति वा न वा ॥ ६ ॥

विभीषणः–

नैव राजनि सुग्रीवे नैव रामे न चाङ्गदे ।
आर्येण दर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते पुरः ॥ ७ ॥

जाम्बवान्–भो राक्षसेन्द्र विभीषण !

तस्मिञ्जीवति दुर्धर्षे हतमप्यहतं बलम् ।
हनूमति गतप्राणे जीवन्तोऽपि हता वयम् ॥ ८ ॥

ततः सत्वरं जाम्बवता सह विभीषणः पृष्ठोपस्थितं मारुतिं विलपन्तं रामचन्द्रमनुस्मराति ।

रामः–(विभीषणमवलोक्य)

गिरीन्यास्यन्त्यमी वीरास्त्वयि वत्स दिवं गते ।
मरिष्यामि ससीतोऽहं क्व यास्यति विभीषणः ॥ ९ ॥

जाम्बवान् विभीषणसे बोले कि–हे राक्षसराज ! जिनसे अंजनी माता सुपुत्रवती है और जिनके होनेसे पवनभी पुत्रवान् है वह वानरश्रेष्ठ हनुमान्जी जीते हैं या नहीं ? ॥ ६ ॥

विभीषण–हे महाराज ! तुमने सुग्रीवमें, महाराज रामचन्द्रजीमें तथा अंगदमें वैसा प्रेम नहीं दिखाया जैसा कि–वायुतनय हनुमान्जीमें स्नेह प्रकट किया ॥ ७ ॥

जाम्बवान्–हे राक्षसराज विभीषण ! उन हनुमान्जीके जीते रहनेपर यह सेना हनन की हुईभी जीतीही है, और हनुमान्जीके प्राणहीन हो जानेसे हम सब जीते हुएभी मरे हुएके समान हो जायँगे ॥ ८ ॥

तदनन्तर शीघ्रही जाम्बवान्के साथ विभीषण पीछे खडे हुए पवनतनय हनुमान्जीको और विलाप करते रामचन्द्रजीको स्मरण करते हैं ॥

रामचन्द्रजी–(विभीषणको देखकर) हे तात लक्ष्मण ! आपके स्वर्गको जानेपर ये वीर वानर पर्वतोंमें चले जायँगे और मैं सीतासहित मृत्युको प्राप्त हो जाऊँगा परन्तु इस विभीषणकी क्या गति होगी ? ॥ ९ ॥



